ATISHAY KALIT

A Referred International Bilingual Research Journal of
Humanities, Social Science & Fine-Arts

LOTUS (July-December) Vol. 6, Pt. B Sr. 12 Year 2017
ISSN 2277-419X
RNI-RAJBIL01578/2011-TC

Chief Editor :
Dr. Rita Pratap (M.A. Ph.D.)

Co-Editor :
Dr. Shashi Goel (M.A. Ph.D.)

Mailing Address :
Dr. Rita Pratap
ATISHAY KALIT
C-24, Hari Marg, Malviya Nagar, Jaipur-302017
Phone - 0141-2521549 Mobile : 9314631852
INDIA

Editor Writes

Dear Friends,

I am glad to inform you that this Journal Atishay Kalit, Lotus issue (June-Dec 2017) has completed its 6th year. Thanks to all my contributors (Research Scholars) for their co-operation. Wishing you all A Very Happy New Year 2018.

With Best Wishes

Dr. Rita Pratap
(Editor)

CONTENTS

1.	Editor Writes	*Dr. Rita Pratap*	2
2.	आध्यात्मिकता के परिप्रेक्ष्य में बंगाल शैली	मनिषा प्रजापत	5
3.	भारत के प्रमुख जैन तीर्थ क्षेत्र	डॉ. प्रगति सिंघल	12
4.	अंजलि इला मेनन–एक समकालीन महिला सशक्त कलाकार	डॉ. रनिका	23
5.	मालवा लघु चित्र शैली में वस्त्रांकन	डॉ. बबीता शर्मा	29
6.	संस्थापन कला में सुबोध गुप्ता का योगदान	कु. नीतू	37
7.	मानवाधिकार भारत के परिप्रेक्ष में	डॉ. प्रगति सिंघल	44
8.	भारतीय कला में अभिव्यंजनावाद के दर्शन	डॉ. नीतू वशिष्ठ डॉ. सोनिका	47
9.	परम्परागत सितार वादन शैली– उ०विलायत खाँ साहब के सन्दर्भ में	सोनम सिंह	53
10.	पेपर मैशी में प्रसिद्ध चित्रकार मंजू मिश्रा	अमनदीप कौर	56
11.	अंगालेखन कलाः सौन्दर्यमयी अलंकार	सविता शर्मा	62
12.	सफल शिक्षण हेतु विधियाँ – आगमन एवं निगमन विधि	डॉ. अल्का पारीक रजनी यादव	67
13.	सूरकाव्य में लोक साहित्य, कला, संस्कृति और धर्म	डॉ. सरला चौधरी	73
14.	THE PERSISTENCE OF GENDER IDEOLOGIES & WOMEN LABOR	Dr. Shashi Goel	85
15.	SACRED BUDDHIST SITES IN SRI LANKA	Dr. Rita Pratap	91
16.	CHILDREN: THE PRICELESS TREASURE	DurgeshYadav	93
17.	''सौन्दर्यवादी कला समीक्षा और प्रयाग शुक्ल''	डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला	95

efu'kk iztkir
व्याख्याता,
अमेटी विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

vk/;kfRedrk d ifjiz{; e cxky 'kyh

dyk ,o vk/;kfRedrk e lc/k

एक कलाकार अपने आन्तरिक जीवन के विकास से अभिप्रेरित होकर अपने अनुभवों को अपनी व्यक्तिगत चेतना के साथ अनुप्राणित कर कलाकृति में डाल देता है। वह इस सृश्टि से सत्य एंव सौन्दर्य खोजता है, संकलित करता है और अन्त में अपनी अनुभूति में समेट कर उसे व्यक्त करता है एक कलाकार सदैव स्वतन्त्र होने के लिए प्रेरित रहता है। एक चिन्तक निरन्तर अपने अस्तित्व के सार की खोज में लीन रहता है, एंव अपना सम्पूर्ण जीवन इसमें लगा देता है। और वह भी सदैव स्वतन्त्र होने के लिए प्रेरित रहता है। कला और आध्यात्म दोनो को ही जीवन में दिशा–निर्देश के रूप में अनुभव किया जा सकता है। दोनों में ही निरन्तरता, प्रवाह, आत्म–निरीक्षण व विकास के गुण शामिल हैं। कला और आध्यात्मक का सबंध बहुत पुराना और गहरा है। आध्यात्मिकता धर्म नहीं है पर धर्मं, आध्यात्मक का एक मार्ग है और कला में सदैव उसे उद्घाटित करने का प्रयास होता रहा है। चित्राकृतियां, मूर्तियाँ, नृत्य, संगीत, प्रतीक चिन्ह आदि सदैव धर्मो में शामिल होते रहे हैं। इसलिये भारत में धर्म और कला ने एक दूसरे पर परस्पर आश्रित होकर एक–दूसरे का विकास किया है। आध्यात्म ईश्वरीय उद्दीपन् की अनुभूति प्राप्त करने का एक दृष्टिकोण भी है। इसमें व्यक्ति के आन्तरिक जीवन का आत्म निरिक्षण शामिल होता है। एक कलाकार भी तो अपनी कला के माध्यम से यही प्रयास करता है। वह निरन्तर अपने आत्मिक चैतन्य के विकास मे लीन रहता है। संभवतः कला और आध्यात्म दो मार्ग हैं जिनका उद्देश्य एक ही है।

cxky dyk 'kyh

भारतीय कला सदैव आध्यात्मिकता से अनुप्राणित रही। समकालीन भारतीय कला शैली की पृष्ठभूमि में एक अती महत्वपूर्ण भाग है, बंगाल शैली। 19वीं शताब्दी में जब भारतवर्ष में परिवर्तन का ऐसा काल चल रहा था जिससे जीवन के प्रत्येक

क्षेत्र में परिवर्तन हुआ, भारत के सभी प्रान्तों में से बंगाल पहला ऐसा जागरूक प्रान्त था जहां आधुनिक वैचारिकता ने एक साथ कई क्षेत्रों में आधुनिकता की ओर बढने के मार्ग खोले। भारतीय कलात्मक चेतना के अग्रदूत कलाकारों में अवनीन्द्र नाथ टैगोर, रविन्द्र नाथ टैगोर, नन्द लाल बसु, गगनेन्द्र नाथ टैगोर, आसित कुमार हाल्दार, चगुताई, यामिनी राय, देवी प्रसाद राय चौधरी, शारदा उकिल, शैलेन्दनाथ ड़े, क्षितिन्द्रनाथ मजुमदार आदि रहे। चित्र रचना को लेकर इन्हाने जो प्रयोग किये उनको नाम दिया गया – बंगाल कला शैली। इस कला आन्दोलन के प्रणेता अवनीन्द्रनाथ ने बंगाल कला शैली का बीज बंगाल धरती में डालकर उसको सम्पूर्ण भारतवर्श में लोकप्रिय बना दिया।

vk/;kfRedrk d ifji{; e cxky 'kyh %&

जिस कला शैली का जन्म महान विश्व प्रसिद्व विभूति रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन के कला भवन में हुआ उसको आध्यात्मिकता से जोड़ने में हमे जरा भी कठिनाई नहीं हो सकती। महान् संगीतज्ञ, कवि और कलाकार रविन्द्रनाथ टैगोर को किसी परिचय की आवश्यकता है ऐसा मैं नहीं सोचती। अपने हजारौं गीतों, सैकड़ों कविताओं, कई सारे नाटको, उपन्यासो, कहानियों और सामाजीक, ध ार्मिक, राजनीतिक, साहित्य, कला–संस्कृति पर दिये गये अपने महत्वपूर्ण विचारों के साथ टैगोर विश्व प्रसिद्व व्यक्तित्व हैं। हांलाकि टैगोर बगांल शैली के कलाकार नहीं थें उन्होंने 70 वर्ष की उम्र में चित्रकारी की। चित्रकला की रूचि का अध्याय उनके जीवन के अन्तिम चरण में अनायास ही जुड़ा। ये एक अद्भुत घटना थी और इसका परिणाम भी अद्भूत था। रविन्द्र की शैली बंगाल कला शैली से नहीं जुडी थी लेकिन उनके विचार इस शैली से सदेव जुड़े रहेगे। कला के संबंध में टैगोर के विचारों में जो बात सर्वोपरि उभर कर आती है वह है–आध्यात्मिकता। टैगोर के अनुसार कोइ अलौकिक शक्ति अवश्य है जो इस विश्व को नियंत्रित करती है, उस शक्ति का बोध आनन्दमय है। चित्र, मूर्ति, काव्य, साहित्य आदि में सौन्दर्य की जो अभिव्यक्ति होती है वह भी आनंदमय है जब मनुष्य इस परम सत्ता को अनुभूत करने का प्रयास या अनुभूत करता है तो कला का रूप ले लेती है गुरू रविन्द्रनाथ टैगोर ने कला को ब्राह्म की अभिव्यक्ति कहा है। कला व आध्यात्म में संबंध स्थापित करते हुए रविन्द्र ने 3 बातों पर बल दिया–

बाह्य सृष्टि का भीतर प्रवेश।

मानसिक जगत की सृष्टि।

उसकी कला के रूप में अभिव्यक्ति।

रविन्द्रनाथ टैगोर की कला में एक प्रकार की रहस्यमयी दुनिया का आभास होता है। उनके चित्रो में अकादमीय विवरण नहीं है। उन्होनें कला की अकादमीय शिक्षा नहीं ली थी। उनके चित्रों में हम अन्तः जगत की खोज देखते है। जैसा कि हमें विदित है उसकी कला बंगााल शैली से नहीं जुड़ी लेकिन उनके विचारों, जो इससे जुड़े है, के अनुसार कला, ब्राह्म की अभिव्यक्ति है जो सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड़ में व्याप्त है। कला में जिस सौन्दर्य की प्राप्ति के प्रयास किये जाते है आध्यात्मिक चिन्तन उसी सौन्दर्य का एक अंग है।

बंगाल शैली के मुख्य चित्रकार अवनीन्द्रनाथ टैगोर जो एक समर्थ चित्रकार, दक्ष कला गुरू व कल्पनाशील साहित्यकार थे कि कला का अध्ययन करने पर हम जान पाते है कि वह कला कितनी महान परम्पराओं से जुड़ी रही है अंग्रेजी सम्राज्य कायम होने से भारतीय कला, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, समाज सभी क्षेत्रो में अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ा। उस समय समाज भुमि तथा कला के क्षेत्र में भारतीय परम्परा व संस्कृति का लोप हो रहा था। अंग्रेजों के उपेक्षा से आहत होकर भारतीय प्राचिन कलाएं चिर निद्रा में सो गई। भारतीय कला एंव सस्कृति पर मडरा रही इस काली छाया से चिन्तित होकर से भारतीय कला के शुभचिन्तको और कलाकारो ने एक कला आन्दोलन चलाया जिसके अग्रणी अवनीन्द्र नाथ रहे। अवनीन्द्र की कला स्वंय में आनन्द की सृष्टि थी। उनकी कला के विषय भारतीयता लिए है यद्यपि उनके द्धारा बनाये धार्मिक चित्रों को हम आध्यात्मिकता से नहीं जोड़ रहे, वे तो केवल उन अवतारो की काव्यात्मक पुनर्सजना थी। लेकिन अपनी कला के माध्यम से अवनीन्द्र ने आध्यात्मक के सच्चे तत्त्वों को भारतीय कला में पुनः स्थापित किया। उन्होने परमसत्ता को संसार के प्रत्येक कार्य की प्रेरक शक्ति, कला की भी प्रेरक शक्ति माना। उन्होने कहा कलाकार एक साधारण मानव से उच्च स्थान रखता है वह चिन्तक है और अध्यात्मक से जुड़ा है।

अवनीन्द्र ने कहा कि कलाकार के पास चार युगल नैत्र होते है। प्रथम से वह बाह्य रूप देखता है। द्वितीय से वह स्मृति के आधार पर उनका पुनः निमार्ण करता है तृतीय से वह रूपो के अन्तः गहराई में जाता है व परम रहस्य को जानने का प्रयत्न करता है और चतुर्थ नेत्र सर्व शक्तिमान होता है जो उन रहस्यों व तत्वों को देखने का प्रयत्न करता है जिनको बाह्य नैत्रो से नहीं देखा जा सकता। उनके इन विचारो में एक कलाकार द्वारा किसी अन्तः जगत की खोज की जाती है, ये अन्तः जगत ही आध्यात्म का ध्येय है।

अवनीन्द्र ने पौराणिक विषयों को चित्रित ही नहीं किया बल्कि उनकें माध्यम से व भारतीय धर्म व दर्शन कों पुनः स्थापित करने में सफल हुए। अवनीन्द्र की कला

में आध्यात्मक के सच्चे तत्व जैसे–सत्य का आचरण, सत्य की विजय, प्रेम का तत्व आदि शामिल है। उनका "शाहजहाँ के अन्तिम दिन" नामक चित्र प्रेम तत्व का दर्शन करा के कहता है प्रेम अमर है। वह प्रेम को स्थापित करता है। अपने रामायण व महाभारत के विषयों पर बने चित्रों के माध्यम से अवनीन्द्र ने भारतीय समाज को सत्य के आचरण व सत्य की विजय का सदेंश दिया, जो आध्यात्म का मुल है एक चिन्तक जहां ध्यान रूपी साधना से सत्य को प्राप्त करता है वहा एक कलाकार चित्रपट व कुंची के माध्यम से सत्य को उजागर एवं स्थापित करता है अन्तर केवल माध्यमों का है। अवनीन्द्र ने भारतिय कलाकारों कों सदेश दिया कि प्रकृति के प्रत्यक्ष अनुकरण करने के स्थान पर दृष्टि जगत से परे अन्तः जगत का अवलोकन तथा भारतीय संस्कृति मे सृजनातमक मूल्यों कों आधार बनाकर उसे सौन्दर्यगत भावों से आच्छादित कर भारतीय कलाकार को अपनी पृथक पहचान बनानी चाहिए। यही कारण है कि इसके चित्र कलाकार के अन्तः मनोभावो व अभिव्यजंनाओं को प्रस्तुत करते है। रेखाकंन की लयात्मकता, वर्णो का लावण्य, भावों की अलौकिकता दर्शक को आध्यात्मिकता से साक्षात्कार कराती है। इस प्रकार अवनीन्द्र ने अपनी कला के माध्यम से भारतीय सस्कृति में आध्यात्मिकता के तत्वों को एक बार पुनः स्थापित किया। भारतीय धर्म, दर्शन, प्रेम आदि को पुनः स्थापित किया।

बंगाल शैली के नन्दलाल बोस जिनकी केवल कला के विशय विचार दोनों उसको आध्यात्म से जोड़ते है। वे कला को साधना मानते। वे कहते कि कला साधना की वस्तु है, आडम्बर की नहीं, उनके अनुसार पूर्ण निष्ठा और मानसिक चेतना के साथ जो कला साधना की जाये वो निश्चिय ही कलाकार का आत्मा से साक्षात्कार करवाती है। कलाकार एक साधु होता है जो अपनी सौन्दर्य मूलक भावनाओं से प्रेरित होता है और कला रचना को साधना बताते हुए उन्होने कहा कि इस साध ाना में कलाकार अपने अस्तित्व से साक्षात्कार करता है। नन्दलाल बोस ने अजन्ता के चित्रों की अनुकृतियां की और जिसका प्रभाव उनके जीवन व कला दोनो पर पड़ा। उन्होने इस बौद्व कला से पूर्ण एकात्मीयता प्राप्त की जो उनको एक सच्चा साधक बना देती है।

अवनीन्द्रनाथ के बहुत ही निकटतम शिष्यों मे से एक थे नन्दलाल बोस। उनके समान ही इनकी कला शैली में भी हम भारतीय दर्शन व परम्पराओ का दर्शन कराते है। इन्होने सम्पूर्ण भारत वर्ष की कला परम्पराओं का अध्ययन किया व उनके सार तत्त्वों को अपनी कला के माध्यम से पुनः स्थापित किया। रविन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरूषो से इनका सम्पर्क रहा जिसका प्रभाव इसकी कला पर भी निश्चत रूप से पड़ा। इनके पौराणिक विषयो पर बने चित्र हो, चाहे

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्र, सभी मे हम एक अलग सी चेतना को महसुस कर सकते है। "शिव का विषपान", "बुद्ध", "अर्जुन", "पार्थसारथी", "भीष्म प्रतिज्ञा", "सती" आदि चित्र भारतीय समाज को सत्य की विजय व सत्य के आचरण का संदेश दे गये।

नन्दलाल बोस ने कला को कल्पना कहा, जिसमें कलाकार अपने चिन्तन को रूपवान बनाता है कला आनन्दद की अभिव्यक्ति है जिसमें दुःख–सुख सभी का वर्णन निहित है। संक्षेप में कला जीवन की प्रेरणा है।

नन्दलाल बोस आर्दश शिक्षक भी रहे। भारतीय समाज को गलत अवधारणाओ से निकाल कर पुनः भारतीय परम्पराओं व दर्शन की स्थापना अपनी कला के माध्यम से करने वाले कलाकारों में बगांल शैली में अवनीन्द्रनाथ टैगोर के बाद इन्ही का नाम आता है।

कला मनीषी असित कुमार हाल्दार ने प्रकृति को अन्तरात्मा का प्रकाशक बताया जो बाह्य सौन्दर्य से परे है। उनके विचारो में आध्यात्म की गहराई झलकती है। रामायण, भगवतगीता, बुद्व से जुड़े उनके चित्रो में हमें सूक्ष्म अनुभूतियां और संगीतात्म. कता व्यंजित होती है। 'मन्दिर की ओर' 'विश्वरूप' 'शिव' 'लक्ष्मी' 'रासलीला' आदि उनके पौराणिक चित्रो में हम अदभूत अलौकिक एवं आध्यात्मिक संदेश प्राप्त करते है इन्होने अजन्ता, जोगीमारा, बाघ की गुफाओं की कला का अध्ययन किया एवं अनुकर्षतिया बनाई, उसने इसकी कला को प्रभावित किया।

इनके चित्र "यशोदा और कृष्ण" में आकृतियों के मुखमण्डलों का शांत भाव किसी मन्दिर दर्शन से कम नहीं है। उन्होने अनेक ऐतिहासिक एंव पौराणिक प्रसगों पर अनेक चित्र बनाए जिनसे भारतीय सस्कंति व सभ्यता का महत्व उन्होने सिद्ध किया अपनी कला के माध्यम से हल्दार ने भारतीयता के रंग मे रंगी व्यापक कला दृष्टि का विस्तार किया, भारतीय सभ्यता, सस्कृति एवं दर्शन को पुनः स्थापित किया।

बगांल शैली के जिस कलाकारों को पुनर्जागरण काल का स्तम्भ माना जाता है, मजुमदार उनमें से ऐसे चित्रकार थे, जिनके चित्रो मे बगांल शैली के गुण अपने आदर्श रूप मे दिखाई देते है। मजुमदार आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण चित्रकार थे। उनकी कला में भारतीय धार्मिक तत्व विशेष रूप से मुखर हुए इनको वैष्णव चित्रकार कहा जाता था। इनके चित्र "चैतन्य गृह त्याग" पर स्वंय अवनीन्द्नाथ ने इनको पुरस्कृत किया वे इनको "चैतन्य सिद्व" कहते थे। मजुमदार ने अपनी कला के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रचार प्रसार किया इनकी कलाकृतियों मे भक्तिभावना का प्राबल्य रहा। इनके चित्र इनके व्यक्तित्व के सरल–निश्छाल, धर्मपरायण विकास के

साथ ही लयात्मक गीत काव्य बन पड़े। चिन्तन, मनन व प्रयोगों से उन्होने अपनी रगंयोजना को समृद्ध किया देवी–देवताओं की आकृतियों से मजूमदार ने नये रूपो अपने सौन्दर्यबोध को विकसित कर चित्रो में आलौकिक वातावरण की सृष्टि की।

मजूमदार ने अपनी तूलिका कृष्ण और चैतन्य को समर्पित कर दी थी इनके सभी चित्र भक्ति और अनन्य प्रेम में पड़े हैं। अपने चित्रो मे मजूमदार ने भावों का सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके चित्र "राधा की कृष्ण से भेटं" लज्जा, प्रेम, भंय के मनोभावों को व्यक्त करने वाला अद्‌भुत चित्र है आलौकिक प्रेम के प्रसंग को पूर्ण पवित्रता से चित्रकार ने मानवीय धरातल पर सहज ही चित्रित कर दिया है। अन्य चित्र "कृष्ण और गोपियों"
उत्कृष्ट है गोपियों द्वारा सर्वस्व सर्मपण की भावना में डुबे कष्ण की रासलीला मजूमदार का प्रिय विषम रही। "तमाल वष्क्ष का अलिगंन करती राधिका" में श्याम रगं मे, रगां वृक्ष, उसकी झुलती शाखाएँ और पीछे से झोंकना चन्द्रमा वातावरण में आलौकिक प्रेम बरसा रहे है। मधुर प्रेम का जो शाश्वत रूप जो राधा जेसा प्रेम कृष्ण के लिए सभी के मन मे बसा है, वो सदेव मजूमदार की विषयवस्तु रही। अपने चित्रो के माध्यम से मजूमदार ने प्रेम मार्ग पर चलकर जो चित्र–सयोजंन बनाये, उनकी ख्याति की कोई सीमा नहीं हो सकती वो बगांल शैली की कला का आध्यात्मिकता से अमर सबंध बने गये।

एक सच्चे चिन्तक के लिए प्रकृति से प्रिय कोई साथी नही होता है, कुछ ऐसा सिद्ध करने वाले बगांल शैली के संत कलाकार वैकंटप्पा थे। एक कलाकार सदैव प्रकृति की आत्मा मे झांकने का प्रयास करता प्रतीत होता है एवं उसमे अपने अस्तित्व का सार खोजता है कुछ ऐसे ही विचारो वाले कलाकार वैकंटप्पा थे जो कला शैली में ही नही, जीवन मे भी शुद्ध परम्परावादी थे।

भारतीय संस्कृति, परम्पराओं एवं सभ्यता के प्रति निष्ठावान अप्पा के मुख्य प्रेरण ाा स्त्रोत पौराणिक विषय रहे। महाभारत व रामायण चित्रावलिर्यां उल्लेखनीय है "स्वण ार्मृग" प्रभवशाली तथा भावपूर्ण चित्र है। "सीता कल्याण" नामक चित्र में सीता भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वैकिटप्पा शिल्पकार भी थे। "शिव ताण्डव" उत्कृष्ट शिल्प है जो अलौकिक वातावरण संयोजित है। चित्रो को अन्त में सुन्दरतम रूप देने की प्रतिभा के धनी वैकंटप्पा कला को साधना मानते थे।

इसी प्रकार अपने स्टुडियो को अपना कला मन्दिर व स्वयं को पूर्णरूपेन कला के लिए समर्पित मानने वाले कलाकार देवी प्रसाद राय चौधरी के लिए उनकी कला ही पूजा थी। और अब्दुर्रहमान चुगताई द्वारा संयोजीत भावप्रधान राधा कष्ण के चित्र

दर्शक के अन्तः स्थल को अनायास ही छु जाते हैं। भारतीय लोक कला परम्पराओ को अपनी देशज कला में उभारने वाले कलाकार यामिनी राय दिलवाने मे अपूर्ण योगदान रहा।

इस प्रकार से भारतीय कला की बंगाल शैली का भारतीय सभ्यता व संस्कृति के मूल्यों को पुर्नस्थापित करने में महान योगदान है। भारतीय धर्म एंव दर्शन की जो प्रतिष्ठा इन कलाकारों की कला में है इसे आध्यात्मिकता से पुर्णरूपेण जोड.ती है हांलाकि कुछ आलोचको ने इस कला शैली की आलोचना करते हुए इसको नकल भी बताया, लेकिन उससे सहमत नही हुआ जा सकता। ये कला इतिहास की विलक्षन घटना थी जो कदापि कमजोर नही आंकी जा सकती। भारतीय परम्पराओं का महत्व पुनः स्थापित करने व भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त करके से इस कला शैली का अपूर्ण योगदान है।

lnHk xUFk

1 डॅा. शुकदेव श्रोत्रिय चित्राायन प्रकाशन, आर्दश कॉलोनी, मुजज्फरनगर–251001

2 मैं, मेरा मन, मेरी शान्ति, आचार्य महाप्रज्ञ, आर्दश सघं प्रकाशन, चुरू (राजस्थान)

3 रचनात्मक जीवन, राधकृष्णन्, हिन्दी पॅाकेट बुम्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110095

4 भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, डॉ. रीता प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ

डॉ. प्रगति सिंघल
शोध छात्रा
जैन अनुशीलन केन्द्र,
राजस्थान वि.वि.,जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

भारत के प्रमुख जैन तीर्थ क्षेत्र

साधारणतः जिस स्थान की यात्रा करने के लिए यात्री जाते हैं, उसे तीर्थ कहते हैं। तीर्थ शब्द का अर्थ घाट अर्थात् स्नान करने का स्थान भी होता है, किन्तु जैनों में कोई स्नान–स्थान तीर्थ नहीं है। नदियों के जल में पाप–नाशक शक्ति है, यह बात वैदिक मानते हैं, जैन नहीं मानते। जैन दृष्टि से तो तीर्थ शब्द का एक ही अर्थ लिया जाता है, 'भव सागर से पार उतरने का मार्ग बताने वाला स्थान'। इसलिए जिन स्थानों पर तीर्थंकरों ने जन्म लिया हो, दीक्षा धारण की हो, तप किया हो, पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया हो या मोक्ष प्राप्त किया हो, उन स्थानों को जैनी तीर्थ स्थान मानते हैं। अथवा जहाँ कोई पूज्य वस्तु विद्यमान हो, तीर्थंकरों के सिवा अन्य महापुरूष रहे हों या उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया हो, वे स्थान भी तीर्थ माने जाते हैं।

दिगम्बर ही नहीं श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायों के भी तीर्थ स्थान हैं। उनमें बहुत से ऐसे हैं जिन्हें दोनों ही मानते हैं और बहुत से ऐसे हैं जिन्हें या तो दिगम्बर ही मानते हैं या केवल श्वेताम्बर, अथवा एक सम्प्रदाय एक स्थान में मानता है तो दूसरा दूसरे स्थान में। कैलाश, चम्पापुर, पाँवापुर, गिरनार, शत्रुंजय और सम्मेदशिखर आदि ऐसे तीर्थ हैं जिनको दोनों ही मानते हैं।[1] गजपन्था, तुंगी, पाँवागिरी, द्रोणगिरी, मेडगिरी, सिद्धवरकूँट, बडवानी आदि तीर्थ ऐसे हैं जिन्हें केवल दिगम्बर परम्परा ही मानती है[2] और आबू, शंखेश्वर आदि कुछ ऐसे तीर्थ हैं जिन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय ही मानता है।[3] प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रों का प्रान्तवार सामान्य परिचय निम्नानुसार है :–

बिहार प्रदेश

सम्मेदशिखर :– हजारी बाग जिले में जैनों का यह एक अति प्रसिद्ध और अत्यन्त पूज्य सिद्ध क्षेत्र है। इसे दिगम्बर और श्वेताम्बर समान रूप से मानते हैं। श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर के सिवा शेष बीस तीर्थंकरों ने इसी पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया था। 23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के नाम पर आज यह पर्वत 'पारसनाथ हिल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्वत की चोटियों पर बने अनेक मन्दिरों का दर्शन करने के लिए प्रतिवर्ष हजारों दिगम्बर और श्वेताम्बर भक्त आते हैं।

कलुआ पहाड़ :– यह पहाड़ गया से 2 मील की दूरी पर स्थित है। इस पहाड़ पर 10 वें तीर्थंकर शीतलनाथ ने तप करके केवल ज्ञान की प्राप्ति की थी।

गुणावा :– यह भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी का निर्वाण क्षेत्र गया–पटना लाइन पर स्थित नवादा स्टेशन से डेढ़ मील पर है।

पाँवापुर :– गुणावा से 13 मील पर, अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का यह निर्वाण क्षेत्र है।[4] उसके स्मारक रूप में तालाब के मध्य में एक विशाल मन्दिर है, जिसको जल मन्दिर कहते हैं। जल मन्दिर में महावीर स्वामी, गौतम स्वामी और सुध र्मा स्वामी के चरण स्थापित हैं।[5] कार्तिक कृष्णा अमावश्या को भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में यहाँ बहुत बड़ा मेला भरता है।

राजगृही या पंचपहाड़ी :– पाँवापुरी से 11 मील दूर राजगृही है। एक समय यह मगध देश की राजधानी थी। यहाँ 20वें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ का जन्म हुआ था।[6] राजगृही के चारों ओर पांच पर्वत हैं। इसी से इसे पंच पहाड़ी भी कहते हैं। महावीर भगवान का प्रथम उपदेश इसी नगरी के विपुलाचल पर्वत पर हुआ था।[7]

कुण्डलपुर :– यह राजगृही से 10 मील पर है। यह भगवान महावीर का जन्‍ मस्थान मानकर पूजा जाता है।

मन्दारगिरि :– भागलपुर से 30 मील पर यह एक छोटा सा पहाड़ है। यह बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य का मोक्ष स्थान माना जाता है।

पटना :– यह बिहार प्रान्त की राजधानी है, पटना सिटी गुलजार बाग स्टेशन के पास में ही एक छोटी सी टीकरी पर चरण–पादुकाएं स्थापित हैं। यहाँ से सेठ सुदर्शन ने मुक्ति लाभ किया था। इनकी जीवन–कथा अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है।

उत्तर प्रदेश

बनारस :– इस नगर के भदैनीघाट मुहाल में गंगा के किनारे दो विशाल दिग. म्बर जैन मन्दिर हैं, जो सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ के जन्म स्थान के रूप में माने जाते हैं।[8] बनारस के भेलूपुर मुहल्ले में एक अन्य प्रसिद्ध जैन तीर्थ भी है। यह स्थान तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि होने से पूजनीय है। इस प्रकार बनारस दो तीर्थंकरों का जन्म स्थान है।

सिंहपुरी :– बनारस से 6 मील की दूरी पर सिंहपुर नामक ग्राम बसा हुआ है, जिसमें 11वें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ ने जन्म लिया था। यहाँ जैन मन्दिर और जैन धर्मशाला बने हुए हैं।

चन्द्रपुरी :– सारनाथ से 9मील पर चन्द्रवटी नाम का गाँव है जो चन्द्रपुरी

का भग्नावशेष कहा जा सकता है। यहाँ पर आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ भगवान ने जन्म लिया था।

प्रयाग :– यहाँ त्रिवेणी संगम के पास ही एक पुराना किला है। किले के भीतरी जीने के अन्दर एक अक्षय–वट (बड़ का पेड़) है। श्री ऋषभदेव ने यहाँ तप किया था।[9] किले में प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी हैं।

पभौसा :– इलाहाबाद और कानपुर के बीच यह एक छोटा सा गाँव है। उसके पास में ही प्रभास नाम से एक पहाड़ है। चढ़ने के लिए 116 सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कहा जाता है कि इस पहाड़ पर छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ भगवान ने तप किया था और यहीं पर उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

कौशाम्बी :– पभौसा से 4 मील गढ़वाय नाम का गाँव है। उसके पास ही में कुशंबा नाम का गाँव है, जो प्राचीन कौशाम्बी नगरी माना जाता है।[10] इसमें भगवान पद्मप्रभ का जन्म हुआ था।

अयोध्या :– जैन शास्त्रों के अनुसार यह प्रसिद्ध नगरी अति प्राचीन काल से जैनों का मुख्य स्थान रही है। जैनों के पांच तीर्थंकरों का जन्म इसी नगरी में हुआ था। आज यहाँ अनेक जैन मन्दिर और धर्मशालाएं विद्यमान हैं।

सेंटमेंट :– इसको श्रावस्ती के नाम से भी जाना जाता है।[11] यह स्थान तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ की जन्मभूमि है।

रत्नपुरी :– यह स्थान फैजाबाद जिले में सोहावल स्टेशन से 2 मील पर है। यह श्री धर्मनाथ स्वामी की जन्म भूमि है। यहाँ दो मन्दिर दिगम्बरों के और एक श्वेताम्बरों का है।[12]

कम्पिला :– यह तीर्थक्षेत्र जिला फर्रूखाबाद में कायमगंज से आठ मील दूर है। यहाँ तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ के चार कल्याणक हुए थे। प्रतिवर्ष चैत्र मास में यहाँ मेला भरता है और रथोत्सव भी होता है।

हस्तिनापुर :– यह क्षेत्र मेरठ से 12 मील पर है। यहाँ श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान इस तरह चार कल्याणक हुए थे।[13] यहाँ 19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ का समवसरण भी आया था।

चौरासी :– मथुरा शहर से करीब डेढ़ मील पर दिगम्बर जैनों का यह प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र है।[14] परम्परा के अनुसार यह अन्तिम केवली श्री जम्बूस्वामी का मोक्ष स्थान माना जाता है। यहाँ एक विशाल जैन मन्दिर है जिसमें उनके चरण चिन्ह स्थापित हैं।

सौरीपुर :– मैनपुरी जिले के बटेश्वर गाँव के जंगल में कई प्राचीन जैन मन्दिर हैं। यहाँ एक छतरी भी है जिसमें श्री नेमिनाथ के चरण स्थापित हैं। यह स्थान श्री नैमिनाथ का जन्म स्थान माना जाता है।

बुंदेलखण्ड और मध्य–प्रान्त

सोनागिरी :– सोनागिरी से 2 मील पर यह सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ एक छोटी सी पहाड़ी पर 77 दिगम्बर जैन मन्दिर हैं, जिनकी वन्दना में एक मील का चक्कर पड़ता है। यहाँ से बहुत से मुनि मोक्ष गये हैं। तलहटी में चार धर्मशाला और 17 मन्दिर हैं। खजुराहो :– पन्ना से छतरपुर को जाते हुए 11वें मील पर एक तिराहा पड़ता है, वहां से खजुराहो 7 मील है। एक छोटा सा गाँव है। कई धर्मशालाएं हैं। यहाँ इस समय लगभग 31 दिसम्बर जैन मन्दिर हैं।[15] यहाँ के मन्दिरों की स्थापत्य कला दर्शनीय और विश्व विख्यात है।

द्रोणगिरि :– छतरपुर के पास सेंधपा नाम का एक गाँव है। इसी गांव के पास एक पर्वत है, जिसे द्रोणगिरि कहते हैं। वहाँ से गुरूदत्त आदि मुनि मोक्ष गये थे। पहाड़ पर 24 मन्दिर हैं।

नैनागिरी (रेशंदी गिरि) :– यह सिद्ध क्षेत्र सेन्ट्रल रेलवे के सागर स्टेशन से 30 मील पर है। गांव में एक धर्मशाला और सात मन्दिर हैं। धर्मशाला से 2 फर्लांग पर रेशन्दी पर्वत है, यहाँ से श्री वरदत्त आदि मुनि मोक्ष गये थे। पर्वत पर 25 मन्दिर हैं।

कुण्डलपुर :– सेन्ट्रल रेलवे की कटनी–बीना लाइन पर दमोह स्टेशन से लग. भग 25 मील पर यह क्षेत्र है। इस क्षेत्र पर कुण्डल के आकार का एक पर्वत है, इसी से शायद इसका नाम कुण्डलपुर पड़ा है। पर्वत तथा उसकी तलहटी में सब मिलाकर 59 मन्दिर हैं।[16] पर्वत के मन्दिरों के बीच में एक बड़ा मन्दिर है, इसमें एक जैन मूर्ति विराजमान है जो पहाड़ को काटकर बनायी हुई जान पड़ती है। यह मूर्ति पद्मासन में है, फिर भी इसकी ऊँचाई 9–10 फुट से कम नहीं है। यह भगवान महावीर की मूर्ति मानी जाती थी किन्तु है ऋषभदेव की। दूर–दूर से लोग इसकी पूजा के लिए आते हैं।

बीना बारहा :– सागर से 48 मील पर यह क्षेत्र है, यहाँ तीन जैन मन्दिर हैं जिनमें एक प्रतिमा शान्तिनाथ भगवान की 14 फुट ऊँची तथा एक प्रतिमा महावीर भगवान की 12 फुट ऊँची विराजमान है और भी अनेक मनोहर मूर्तियाँ है।

देवगढ़ :– सेन्ट्रल रेलवे के ललितपुर स्टेशन से 19मील दूर पहाड़ी पर यह क्षेत्र स्थित है। यह सचमुच देवगढ़ है। यहाँ अनेक प्राचीन जिनालय हैं और अगणि

ात खण्डित मूर्तियाँ हैं।[17] कला की दृष्टि से भी यहाँ की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। कुशल कारीगरों ने पत्थर को मोम कर दिया है। करीब 200 शिलालेख यहाँ उत्कीर्ण हैं। 8 मनोहर मानस्तम्भ हैं।[18]

अहार :– टीकमगढ़ से 9 मील पर अहार गाँव है। वहाँ से करीब 6 मील पर एक ऊजड़ स्थान में तीन दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिर में 21 फुट ऊँची शान्तिनाथ भगवान की अतिमनोज्ञ मूर्ति विराजमान है, जो खण्डित है, किन्तु बाद में जोड़कर ठीक की गयी है।[19] यह प्रतिमा वि.सं. 1237 में प्रतिष्ठित की गयी थी। इन मन्दिरों के सिवा यहाँ अन्य भी अनेक मन्दिर थे, किन्तु बादशाही जमाने में वे सब नष्ट कर दिये गये और अब अगणित खण्डित मूर्तियाँ यहाँ विद्यमान हैं।

चन्देरी :– यह ललितपुर से 20 मील है। यहाँ एक जैन मन्दिर में 24 वेदियाँ हैं और उनमें जिस तीर्थंकर के शरीर का जैसा रंग था उसी रंग की चौबीसों ती. र्थंकरों की चौबीस मूर्तियाँ विराजमान हैं।[20] ऐसी चौबीसी अन्यत्र कदाचित कहीं भी नहीं है।

अन्तरिक्ष–पार्श्वनाथ :– सेन्ट्रल रेलवे के अकोला (बरार) से लगभग 40 मील पर शिरपुर नाम का गाँव है गांव के मध्य धर्मशालाओं के बीच में एक बहुत बड़ा प्राचीन विशाल दुमंजिला जैन मन्दिर है। नीचे की मंजिल में एक श्यामवर्ण 2 फुट ऊँची पार्श्वनाथ जी की प्राचीन प्रतिमा है जो वेदी में अधर विराजमान है, सिर्फ दक्षिण घुटना कील बराबर सटा हुआ है। इसी से यह प्रतिमा अन्तरिक्ष–पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है।[21]

कारंजा :– अकोला जिले में मुर्तिजापुर स्टेशन से यवतमाल को जाने वाली रेलवे लाइन पर यह एक कस्बा है यहाँ पर तीन प्राचीन विशाल जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिर में चाँदी, सोने, हीरे, मूंगे और पन्ने की प्रतिमाएं हैं। यहाँ दो भट्टारकों की गद्दियाँ हैं, एक बलात्कार गण की और दूसरी सेन–गण की। सेनगण भट्टारक के मन्दिर में संस्कृत–प्राकृत के प्राचीन जैन ग्रन्थों का बहुत बड़ा भंडार है। यहाँ महावीर ब्रह्मचर्याश्रम नाम की एक आदर्श शिक्षा–संस्था भी है।

मुक्तागिरि :– यह सिद्धक्षेत्र बराड के एलिचपुर से 12 मील पर पहाड़ी जंगल में है। नीचे धर्मशाला है। पास में ही एक छोटी पहाड़ी है, जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। गुफाओं के आसपास 52 मन्दिर हैं। यहाँ से बहुत से मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया था।

भातकुली:– यह अतिशय क्षेत्र अमरावती से 10 मील पर है। यहाँ पर तीन दिगम्बर जैन मन्दिर हैं जिनमें से एक में ऋषभदेव स्वामी की तीन फुट ऊँची मूर्ति

पद्मासन युक्त विराजमान है, इसकी यहाँ बहुत मान्यता है।

राजपूताना और मालवा

श्री महावीर जी :– पश्चिमी रेलवे की नागदा मथुरा लाइन पर श्री महावीर जी नाम का स्टेशन है। यहाँ से 4मील पर यह क्षेत्र है। यहाँ एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर है उसमें महावीर स्वामी की एक अतिमनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा पास के ही एक टीले से निकली थी। इसे जैन और जैनेतर, खास करके जयपुर रियासत के मीना और गूजर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से पूजते हैं। यात्रियों का सदा ताता लगा रहता है।

चाँदखेडी :– कोटा रियासत में खानपुर नामक एक प्राचीन नगर है। खानपुर से 2 फर्लांग की दूरी पर चाँदखेडी नाम की पुरानी बस्ती है। यहाँ भूगर्भ में एक अति विशाल जैन मन्दिर है। इसमें अनेक विशाल जैन प्रतिमाएँ हैं। द्वार के उत्तर भाग में एक ही पाषाण का 10 फुट ऊँचा कीर्ति स्तम्भ है। इसमें चारों ओर दिगम्बर प्रतिमाएं खुदी हुई हैं।

बिजौलिया पार्श्वनाथ :– नीमच से 68 मील पर बिजौलिया गाँव के समीप ही श्री पार्श्वनाथ स्वामी का अति प्राचीन और रमणीक अतिशय क्षेत्र है। एक मन्दिर में एक ताक के महराब के पास 23 प्रतिमाएं खुदी हुई हैं।[22] चारों तरफ दीवारों पर भी मुनियों की बहुत सी मूर्तियां खुदी हुई हैं। एक विशाल सभा मण्डप, चार गुमटियाँ और दो मान स्तम्भ भी हैं। मान स्तम्भों पर प्रतिमाएं और शिलालेख हैं।

ऋषभदेव (केसरिया जी):– उदयपुर से करीब 40 मील पर यह क्षेत्र है। यहाँ श्री ऋषभदेव जी का एक बहुत विशाल मन्दिर बना हुआ है।[23] उसकी चारों ओर कोट है। भीतर मध्य में संगमरमर का एक बड़ा मन्दिर है जिसके 48 ऊँचे–ऊँचे शिखर हैं। इसके भीतर जाने पर ऋषभदेव जी का बड़ा मन्दिर मिलता है, जिसमें श्री ऋषभदेव जी की 6–7 फुट पद्मासनयुक्त श्याम–वर्ण की दिगम्बर जैन मूर्ति है। यहाँ केसर चढ़ाने का इतना रिवाज है कि सारी मूर्ति केसर से ढक जाती है, इसलिए इसे केसरिया जी भी कहते हैं।

आबू पहाड़ :– आबू पहाड़ पर सड़क की दायीं ओर एक दिसम्बर जैन मन्दिर है तथा बायीं ओर दिलबाड़ा के प्रसिद्ध श्वेताम्बर मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें से एक मन्दिर विमलशाह ने वि.सं. 1088 (1031 ई.) में 18 करोड़ 53 लाख रूपये खर्च करके बनवाया था।[24] दूसरा मन्दिर (लगभग दो सौ वर्ष बाद) वस्तुपाल–तेजपाल ने 12 करोड़ 53 लाख रूपये खर्च करके बनवाया था। दोनों मन्दिरों के बीच छोटा सा दिगम्बर जैन मन्दिर भी है।

अचलगढ़ :– दिलबाड़ा से पांच मील दूर अचलगढ़ है। यहां तीन स्वेताम्बर मन्दिर हैं उनमें से एक मन्दिर में सात धातु की 14 प्रतिमाएं विराजमान हैं।[25]

गुजरात और महाराष्ट्र

तारंगा :– यह प्राचीन सिद्ध क्षेत्र गुजरात के महीकांटा जिले में पश्चिमी रेलवे के तारंगा हिल नाम के स्टेशन से तीन मील पहाड़ पर है। यहाँ से वरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं।[26]

गिरनार :– सौराष्ट्र (गुजरात) में जूनागढ़ के निकट यह सिद्धक्षेत्र विद्यमान है। 22वें तीर्थंकर श्री नैमिनाथ ने इसी गिरनार पहाड़ के सहस्राम्र वन में दीक्षा धारण करके तप किया था। यहीं उन्हें केवल ज्ञान हुआ था और यहीं से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। उनकी वाग्दत्ता पत्नी राजुल ने भी यहाँ दीक्षा ली थी। पहले पहाड़ पर एक गुफा में राजुल की मूर्ति बनी हुई है तथा दिगम्बरों और श्वेताम्बरों के अनेक मन्दिर बने हुए हैं। दूसरे पहाड़ पर चरण चिन्ह हैं। यहाँ से अनिरूद्ध कुमार ने निर्वाण प्राप्त किया था। तीसरे से शम्भु कुमार ने निर्वाण लाभ किया था। चौथे पहाड़ पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं। इसलिए उस पर चढ़ना बहुत कठिन है। यहाँ से श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युन कुमार ने मोक्ष प्राप्त किया था और पांचवे पहाड़ से भगवान नेमिनाथ मुक्त हुए थे। सब जगह चरण चिन्ह हैं तथा कहीं–कहीं पहाड़ में उकेरी हुई जिन मूर्तियाँ भी है।

पावागढ़ :– बड़ौदा से 28 मील की दूरी पर चांपानेर के पास पावागढ़ सिद्ध क्षेत्र है। यह पावागढ़ एक बहुत विशाल पहाड़ी किला है। पहाड़ पर आठ–दस मन्दिरों के खण्डहर हैं, जिनका जीर्णोद्धार कराया गया है। यहाँ से श्री रामचन्द्र के पुत्र लव और कुश को तथा अन्य बहुत से मुनियों को निर्वाण लाभ हुआ था।

एलोरा :– मनमाड़ जंक्शन से 60 मील दूर एलोरा ग्राम है। यह ग्राम गुफा–मंदिरों के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है इससे सटा हुआ एक पहाड़ है, ऊपर दो गुफाएँ है, नीचे उतरने पर सात गुफाएँ और हैं जिनमें हजारों जैन प्रतिमाएं हैं।[27]

कुंथलगिरि :– यह क्षेत्र महाराष्ट्र प्रदेश में वार्सीटाउन रेलवे स्टेशन से लगभग 21 मील दूर एक छोटी पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ से देश भूषण और कुल भूषण मुनि मुक्त हुए थे। पर्वत पर मुनियों के चरण चिन्ह सहित 10 मन्दिर हैं।

बादामी के गुफा–मन्दिर :– बीजापुर जिले में बादामी एक छोटा कस्बा है। इसके पास दो प्राचीन पहाड़ी किले हैं। दक्षिण पहाड़ी की बगल में लगभग छठी सदी के बने हुए हिन्दुओं के तीन और जैनियों का एक गुफा मन्दिर है[28] जैन गुफा मन्दिर में अनेक मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। यह गुफा मन्दिर बादामी के प्रसिद्ध चालुक्य

वंश के राजा पुलकेशी ने बनवाया था।

कर्नाटक प्रदेश

वरांग :– दक्षिण कनाडा जिले में एक छोटा–सा गांव है। सड़क से लगे प्राकार के अन्दर एक बहुत विशाल मन्दिर है। मन्दिर में पाँच वेदियाँ है जिनमें बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएं हैं। एक मन्दिर पास ही तालाब में है। मन्दिर छोटा लेकिन बहुत सुन्दर है।

मूडबिद्री :– कारकाल से तीस मील पर यह एक अच्छा कस्बा है। यहाँ 18 मन्दिर हैं जिनमें एक मन्दिर बहुत विशाल है उसका नाम त्रिभुवन–तिलक–चूड़ामणि

है। एक दुमंजिला मन्दिर सिद्धान्त –बसति कहलाता है। इस मन्दिर में दिगम्बर जैनों के प्रख्यात ग्रंथ श्री धवल, जय धवल और महाबन्ध कनड़ी लिपि में ताडपत्रों पर लिखे हुए सुरक्षित हैं।[29] इसमें 37 मूर्तियाँ पन्ना, पुखराज, गोमेद, मूंगा, नीलम आदि रत्नों की हैं।

बेलूर : हलेबिड :– कर्नाटक के हासन शहर से उत्तर में एक दूसरे से दस बारह मील के अन्तर पर स्थित हैं। यहाँ का मूर्ति निर्माण दुनिया में अपूर्व माना जाता है। आज ये दोनों स्थान कला धानी के रूप में ख्यात हैं। दोनों स्थानों के आस–पास जैन मन्दिर हैं।[30]

श्रवणबेल्गोलः– श्रवणबेल्गोल में चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि नाम की दो पहाडियाँ पास–पास हैं, इन दोनों पहाड़ियों के बीच एक तालाब है, इसका नाम बेल्गोल अथवा सफेद तालाब था। यहाँ श्रमण आकर रहे, इस कारण इस गाँव का नाम श्रवण –बेल्गोल पडा[31] यह दिगम्बर जैनों का एक महान तीर्थ स्थान है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त अपने गुरू भद्रबाहु के साथ अपने जीवन के अंतिम दिन बिताने के लिए यहाँ आया था[32] गुरू ने वृद्धावस्था के कारण चन्द्रगिरि पर सल्लेखना धारण करके शरीर त्याग दिया। चन्द्रगुप्त ने गुरू की पादुका की 12 वर्ष तक पूजा की और अन्त में समाधि धारण करके इह जीवन लीला समाप्त की।

विन्ध्यगिरि नाम की पहाड़ी पर गोम्मतेश्वर की विशाल मूर्ति विराजमान है। एक गुफा में श्री भद्रबाहु स्वामी के चरण चिन्ह बने हुए हैं।

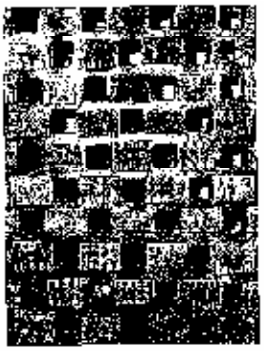

हुमचा :– सड़क मार्ग द्वारा हुमचा तीन स्थानों से सीधे पहुँचा जा सकता है सागर से आनन्दपुरम, रिपनपेट होते हुए हुमचा कुल 64 कि.मी. है, दक्षिण में ती. र्थहल्ली से 29 कि.मी. और शिमोगा से लगभग 60 कि.मी. है।[33]

यह एक प्रसिद्व अतिशय क्षेत्र है। हुमचा में सबसे महत्वपूर्ण अतिशय पद्मावती (लोकियब्बे) देवी है जिसका अलग मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिर के समीप ही स्थित है। यहाँ लोग पूजा अर्चना कर मनौतियाँ मनाते है। कहा जाता है कि यदि किसी भक्त का कार्य सिद्ध होने की सम्भावना हो तो देवी के दाहिने भाग से फूल गिरता है (यहां फूल चढ़ाए जाते हैं)। यह कार्यक्रम यहाँ प्रतिदिन हर समय चलता रहता है। भक्तों की भीड़ लगी रहती है। लोग बसों, कारों व अन्य सभी साधनों से यहाँ पहुँचते हैं।

कारकाल :– वरांग से 15 मील पर यह एक अच्छा स्थान है। यह दिगम्बर जैनों का बहुत प्राचीन तीर्थस्थान है। यहाँ 15 जैन मन्दिर हैं। एक पर्वत पर भी बाहुबली स्वामी की 32 फीट ऊँची खड्गासन मूर्ति विराजमान है। इसके सामने एक दूसरा पर्वत है, उस पर एक मन्दिर है उसके चारों ओर तीन–तीन विशाल खड्गासन प्रतिमाएं है। यह मन्दिर कारीगरी की दृष्टि से भी दर्शनीय है।

१०. कारकल – गोम्मटेश्वर बसदि : गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति

मंगलोर :– यह स्थान मूडबिद्री से केवल 37 कि.मी. दूर है। यहाँ एक प्रसिद्ध

दिगम्बर जैन मन्दिर है। यहाँ के मूल नायक शान्तिनाथ हैं। उनकी प्राचीन प्रतिमा पद्दमासन में लगभग दो फुट ऊँची है। उन्हीं के नाम पर यह मन्दिर 'मंगलूर शान्तिनाथ स्वामी जैन मन्दिर' कहलाता है।

गोम्मतगिरि (श्रृवणगुड्डा) :– गोम्मतगिरि का दूसरा नाम श्रृवणगुड्डा भी है।[34] श्रवण का तो सीधा संबंध 'श्रमण' या जैन साधु से है। जबकि 'गुड्डा' का अर्थ हुआ छोटी पहाड़ी। इस प्रकार श्रवण गुड्डा का अर्थ हुआ जैन साधु या श्रमण की पहाड़ी। यह गिरि मैसूर से केवल 26 कि.मी.की दूरी पर है। यहाँ 18 फुट ऊँची काले पाषाण की बाहुबली की मूर्ति है। इस मूर्ति का निर्माण इस प्रदेश के जैन ध र्मानुयायी चंगाल्व राजाओं के समय में (ग्यारहवीं शताब्दी) हुआ था। इस मूर्ति की मुख–मुद्रा प्रशान्त किन्तु कुछ हास्य लिये हुए है। बाहुबली के दोनों पैरों और भुजाओं पर माधवी लता दो बार लिपटी हुई दिखाई गई है। मूर्ति अति मनोज्ञ है।

यद्यपि जैन तीर्थ स्थल देश के कौने–कौने में विद्यमान हैं किन्तु मैंने यहाँ देश के प्रमुख जैन तीर्थ क्षेत्रों का ही परिचय कराया है।

सन्दर्भ

1. जैनधर्म, पृ0सं0 214 – श्री कैलाश चन्द शास्त्री
2. भारतीय संस्कृति को जैनधर्म का योगदान पृ.165 – हीरा लाल जैन
3. पाँवापुरस्य बहिरून्नत–भूमि देशे पद्मोत्पलाकुल वतां सरसां हि मध्ये, श्री–वर्धमान–जिन–देव इति प्रतीतो निर्वाणमाप भगवान प्रविधूत–पाप्मा। –संस्कृत निर्वाण भक्ति, श्लोक 24।
4. जैनधर्म पृ0 19 – श्री कैलाश चन्द शास्त्री
5. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृ0 10 – हीरा लाल जैन
6. षट् – खण्डागम की धवला टीका (खण्ड 1, पृ0 10) – हीरा लाल जैन
7. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ0 10
8. महापुराण (35, 104–185)
9. द्रष्टव्य, जी.आर.शर्मा एक्सक्वेशन्स ऍट कौशाम्बी, 1959–60
10. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एशेन्ट इण्डिया, पृ0 96 – श्री सतीश चन्द्र
11. जैन धर्म, पृ0 217 – श्री कैलाश चन्द शास्त्री
12. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान पृ0 19 – हीरा लाल जैन
13. मथुरा परिचय – वाजपेयी पृ0 46
14. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड ईस्टर्न आर्किटैक्चर (लंदन, 1876)
15. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड ईस्टर्न आर्किटैक्चर पृ0 241
16. जैन धर्म पृ0219 – श्री कैलाश चन्द शास्त्री
17. ला रिलिजन द जैन
18. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर पृ0 243–44

डॉ. रनिका
प्रवक्ता, चित्रकला विभाग
आई. एन. पी.जी. कॉलेज,
मेरठ

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

अंजलि इला मेनन–एक समकालीन महिला सशक्त कलाकार

अनियंत्रिक उल्लास से युक्त आरम्भिक काम के बाद अंजलि इला मेनन की कृतियों में परिवक्वता गहराई, स्थिरता के साथ–साथ व्यथा तथा विश्वसनीयता भी देखी जा सकती है। इनका कार्य अन्य किसी भी चित्रकार से भिन्न है। उन्होने अमूर्त कला से लेकर यथार्थ का विश्लेषण करने तक का कार्य किया। उनके चित्रों में रंगों की चमक बाइजैन्टाइन कला की तरह है। मुख्य रूप से चित्रांकन के लिये चित्रकार हार्ड बोर्ड के धरातल का प्रयोग करती है।[1] समकालीन भारतीय कला को अंजलि इला मेनन ने नये आयाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी सृजन यात्रा ने एक लंबी दूरी तय की है जो सामान्य अमूर्त कला से प्रारम्भ होकर यर्थाथवादी कला तक जाती है। उनके कृतियों के विषय हो, रंग हो या रूपाकार सभी प्रयोग धर्मी पद्धतियों के पिरों के कला को नये भावात्मकता से अभिव्यक्त किया गया है। चित्र उनके लिये अभिव्यक्त का माध्यम है। वह अपने समाज देश और विदेशों की कलाक्रम पर अपनी नजर रखती है। रंगों के द्वारा वह अपने मन के भावों को कैनवास पर उकेरती है।[2]

अंजलि इला मेनन का जन्म बर्नपुर, जिला बर्दवान (पश्चिम बंगाल) में 1940 में हुआ था। उनमें बचपन से ही कला के प्रति रूचि थी। जिसके कारण घर के लोगों की इच्छा के विपरीत वे कला की दुनिया से ही जुड़ती गई। शुरू के दिनों में भी जब वे कला को जानने की कोशिश में लगी थी, कई–कई घण्टों तक काम करती और अपने अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करती। अठठारह वर्ष की अवस्था में वे 'पेंटिग' करने में अग्रसर हुई और धीरे–धीरे यात्रा के इस पड़ाव पर भी वे पहुंचने में सफल हुई। जहां पहुंचना सबके लिये संभव नहीं होता। 1960 का वर्श उनके जीवन का महत्वपूर्ण वर्ष है, जब बीस वर्ष की अवस्था में वे पेरिस स्थित अटेलिअर फ्रैस्क्यू में कला में अध्ययन के निमित्त दाखिल हुई। इसके पहले चार वर्षों तक (1956 से 1960 तक) वे सर जे0 जे0 स्कूल आफ आर्ट, मुम्बई में कला की शिक्षा ले चुकी थी। अपनी जिन्दगी के प्रारम्भिक दिनों की चर्चा करते हुए वे स्वयं करती

है– बचपन में तमिलनाडु स्थित लपडाले में लारेन्स को एडुकेशनल बोडिंग स्कूल में दाखिल हुई थी। मेरी प्रवृति के विपरीत वह स्कूल सैनिक परम्परा पर आधारित था। उस स्कूल का कला विभाग बड़ा सुन्दर शांत और सुरूचिपूर्ण था जिसका संचालन असाधारण शिक्षक श्री सुशील मुखर्जी के जिम्मे था। यहां उनसे पूरी आजादी पाली थी। वे मेरे सहित दूसरे कुछ अन्य छात्रो ंको, जिनको प्रतिभा दिखती थी, अपने अध्ययन कक्ष में सुन्दर चित्रों वाली पुस्तकें, खासकर प्रभाववादी कलाकरों कलाकारों की निर्मित कृतियों दिखाते थे। सभी उन्हें देखते और चमत्कृत होते थे। उन दिनों वान गांग से बेहद प्रभावित थे और एक दिन जब सुना कि उन्होंने अपने कान काट डाले थे, तो बहुत रोये भी थे। उन्हीं सुशील मुखर्जी से प्रेरणा ने अंजलि को कला की ओर मुड़ने में मदद की जो यह जानते हुए भी उनकी कलाकार बनने में सहायता दे रहे थे कि उनका परिवार उन्हें एक डाक्टर ही बनाना चाहता हैं। सुशील मुखर्जी ने बचपन में ही अंजलि को पहचान लिया था और देख लिया था कि अंजलि में असाधारण कला प्रतिभा है। एक दिन इन्हीं सुषील मुखर्जी ने अंजलि को अपने पैलेटट माइक के उपयोग की स्वीकृति दी। उन्हीं की प्रेरणा और आजादी से पन्द्रह की अवस्था तक अंजलि ने चालीस कृतियां बनाई जिनमें से कुछ बिक्री भी जे0जे0 स्कूल बंबई में रहते हुए वहीं एम0एफ0 हुसैन और मोहन सामन्त की कृतियां देखकर वे आश्चर्य में पड़ी। अंजलि स्वयं कहती हैं– 'सामान्त की प्रारम्भिक कृतियां हुई कि कैसे एक कलाकार स्थान के विस्तार और उसके खालीपन को नया अर्थ दे सकता है। हुसैन की उस दौर की कला से भी अंजलि ने मजबूत काली रैखिकता और उपर की ओर बढ़ती सतह पर आधारित उनके शिल्प से अपनी समझ बनाई, पर विजय उनके अपने ही रहे। 18 वर्ष की उम्र में वे मोदिग्तीआनो के 'फार्म' की तरह भी काम करने को प्रेरित हुई तो अमृता शेरगिल की ग्राम्य भारत से प्रेरित भावप्रवण कृतियों से भी प्रभावित हुई। पेरिस में अंजलि ने खूब परिश्रम किया और प्रायः रोज रेखांकनो पर थका देने वाला काम किया। यहां कलाकार ने कृति की तकनीक का गहरा प्रशिक्षण पाया और रंगों के पतले लेप के उपयोगी की तकनीक का गहरा प्रशिक्षण पाया और रंगों के पतले लेप के उपयोगी अभ्यास किये। इसी बीच पेरिस में न्यूयार्क भी जाना पड़ा। जहां इन्होंने 'हरलेम पिक्चर्स' पर एक श्रृंखला भी निर्मित की जो पेरिस में बिक्री भी।[3] अतः कला विद्यालय में उनका मन उबने लगा और वे दिल्ली चली गयी। यहां पर उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य में स्नातक किया। साथ पेटिंग भी करती रही। वर्ष 1959 में फ्रांस सरकार की छात्रवृत्ति पर वह अध्ययन हेतु फ्रांस गई और 1961 तक वहां रही है। इस दौरान उन्होंने कठोर परिश्रम किया।[4]

एक कलाकार के रूप में अंजलि ने भारत और भारत के बाहर बेहतर कला शिक्षा पाई, अच्छा कला परिवेश भी प्राप्त किया और अपनी एक अलग प्रविधि विक. सित की। अपने बचपन के ही मित्र को पति के रूप में स्वीकार कर 1962 में, अंजलि ने जीवन और कला के दोनों क्षेत्रों की चुनौतियां स्वीकार की तथा कला में निरन्तर अपने विकास करते हुए परिवार के दायित्वों का भी बखूबी निर्वाह किया। आज के समकालीन भारतीय कला परिदृश्य में एक कदद्ावर कलाकार के रूप में अंजलि इला मेनन का कला संसार विविधताओं का संसार है। वे अपनी कला में अपने प्रेक्षकों से संबोधित होती है और उनसे संवाद भी करती है। उनकी कृतियों में आख्यान परकता का दुर्लभ तत्व है जो बहुधा उनके समकालीन कलाकारों में भी पाया जाता। कला के गहरे अर्थों में वे ऐसी कलाकार के रूप में जानी जाती है जिनमें सरोकार व्यापक है और जिनकी कला का परिप्रेक्ष्य उदात्त है। उनकी कला को समीक्षकों ने तीन चरणों में विभाजित किया है। 1960–1970, 1970–1980 और 1990 से अब तक इन तीन चरणों में अंजलि के काम अलग–अलग भावक्षेत्रों को दृश्य में लाते हैं। पर उनका केन्द्रीय 'थीम' एक है मनुष्य को प्रकृति और अन्य जीवों के साथ निव्यस्त करते हुए उसकी दुरभिसंधियों तथा जटिलताओं की अभिव्यक्ति। यह वह केन्द्रीय वस्तु है जिसके सहारे कलाकार के सभी चरणों की कृतियों का सम्प्रेषण सम्भव है और उनके भावों का अर्थ ग्रहण भी।

अंजलि अपने समय के गहरे विचारों को आत्मसात् करती है और दुनिया भर के अपने अनुभवों जैसे–पेरिस, न्यूयार्क, मास्को आदि की कला तथा साहित्य के अनुभवों जैसे पेरिस, न्यूयार्क, मास्को आदि की कला तथा साहित्य के अनुभवों को अपने विचारों को निर्मित का आधार बनाती है और उसे अपनी पद्धति में अभिव्यक्त करती है। अपने समय से गहराई में जुड़ी हुई अंजलि की आप आज के बाजारवाद और तथाकथित अपसंस्कृति के विरोध में पायेंगे तो स्त्रियों के हक में संघर्ष करते हुए भी। आकृति मूलकता के बावजूद कलाकार की अर्थ पूर्ण रंगयुक्तियों प्रेक्षक की सोच में घुली चली जाती है। अंजलि की कृतियां उस अर्थ में आख्यानपरक नहीं है जिस अर्थ में उनके समकालीनों की कृतियां है। उनकी कृतियां रूपकों और प्रतीकों के मध्य युक्तियों में खुलती हैं। यहां स्त्री, पुरूष, पादरी, कौवे पतंग जैसे प्रतीक नये अर्थ और आयामों के वाहक होते हैं। अधिकतर सभी दशकों ने उनकी कृतियों का तीन चरणों में विभाजित कर रखा है। पर अधिकांश की यही धारणा है कि अंजलि अपने प्रेक्षकों को जिस संसार में ले जाती है। यह संसार रहस्यमयता के साथ साथ जीवन के गहरे क्षणों में ले जाती है। वह संसार रहयमयता भूदृश्यों को भी सामने लाती हैं। कलाकार के प्रारम्भिक कार्यों में पारम्परिक चित्र पद्धति स्पष्टतया देखी जा

सकती है। जिसमें वे आकृतियों को तोड़े बिना, गहरे तूलिका धातों से रंगों में अपने भावों को विन्यस्त करती है। इस दौर की कृतियां भी गुणवत्ता की दृष्टि से बेहतर है और इनमें एक लय उभरती ध्वनित होती है। यह दौर वान गांग औश्र मोदिग्ली. आनी के प्रभाव का दौर है। जिसमें अमृता शेरगिल तथा जामिनी राय के शिल्प का भी असर है। इन कृतियों में मार्था, आर्चीन, ट बाथर, रिफयूजी, मुराद फिशरवोमेन, आयशा, मैडोना पोट्रेट ऑफ निशा, मस्जिद केयोन्य जैसी कृतियां शामिल है। इन कृतियों में फ्रांसीसी प्रभाववाद की भी झलक देखी जा सकती है। पर कुछ कृतियों में अंजलि भारतीय शैली की छाप देने में भी सफल हुई है, खासका जामिनी राय जैसी रेखाएं स्पष्टतया उभरकर आती हैं।[5] समय के साथ साथ अंजलि की कृतियां अधिक पुष्ट होकर उभरती है। इस समय भी कृतियों में अधिकतर स्त्रियां ही दिखाई देती है। ये आकृतियां प्राप्ति के विभिन्न रूपाकारों के साथ दिखाई देती है। जिसमें कौआ, बंदर, बिल्ली, छिपकली, बाघ, बकरी, कुत्ते आदि जानवर दिखाई देते हैं। ये पशु पक्षी मानवीय आकार के साथ मिलकर जीवन यर्थाथ की व्यस्त करती है।

आर्चीन - अंजलि इला मेनन (1958)

कलाकृतियां उनकी एक महत्वपूर्ण आकृति 'मलावार' जिसमें हरी घास पर एक तख्त रखा हुआ है, दूर तक भूदय भूरे रंगों के तान से उभरा है। ये कौवे की सोच की मुद्रा में बैठे दिखाई देते है। मानवाकृतियों से रहित यह संयोजन एक काल्पनिक व रहस्यमय वातावरण को दर्शाती है। अंजलि की कला की एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि वे स्त्रियों की यातना उनके पिछड़ेपन या भेदभाव से संबंधित मुददा बनाकर पेश नहीं करती है। बल्कि उन्हें स्त्रियों की भक्ति पर भरोसा है, इसलिये उन्हें ऐ सादगी रहस्यमयग व भाव प्रविणता लिये हुए दिखाई देती है।

अंजलि ने अनको एकल प्रदर्शनी देश विदेशों में की है वह अनेकों राष्ट्रीय अन्तराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये है। 'आपके कार्य पर अंजलि इला मेनन' नाम से

टाइम्स आफ इंडिया ने प्रकाशन किया तथा दूरदर्शन द्वारा एक फिल्म बनाई गयी। आपकी कलाकृतियां नेशनल गैलरी आफ मार्डन आर्ट, नई दिल्ली, ललित कला अक. ादमी, नई दिल्ली, बिडला एकेडमी आफ आर्ट्स एंड क्राफटस, कोलकाता, चंडीगढ़ म्यूजियम, सिमेरोवा आर्ट गैलरी, कुकुओं का म्यूजियम जापान, बन्जामिन ग्रे म्यूजियम, न्यूयार्क आदि संग्रहालयों में संगृहीत है।[6] अंजलि की पेंटिंग्स हार्डबोर्ड पर प्रक्षेपित स्वप्नों की रहस्यमयी प्रतिलिपियां चित्रांकन के लिये इसी हार्डबोर्ड के धरातल की वरीयता देती है। उनकी प्रतिमाओं जैसी आकृतियां जो प्राच्य का संस्पर्श लिये हुए हैं, अकसर संतुष्ट निश्क्रिय दिखायी देती हैं, उदाहरण के लिए ज बवह किसी प्रोढ़ा का अंकन करती है तो वह उसे किसी आंतरिक उदासी में डूबी हुई दिखाती है। वह आम लोगों की घटनाओं पर बड़ी सहानुभूति से देवत्व—आरीपण करती लगती है। उनकी पेटिंग्स कला तथा भावपूर्ण निश्चलता को अभिव्यक्त करती है। अंजलि के भीतर का आकार अपने चित्र विषयों का अंग बन जाता है और बड़ी प्रगाढ़ता से एक प्रखर तक की रचना पर डालता है जिसमें बड़ा सम्मोहक वातावरण बन जाता है। जैसा कि उनका कहना है, उनकी शबीहें यर्थाथ शबीहें नहीं है, एक अच्छी तह के लिये जरूरी है कि यह 'सिटर' के बाहरी रूप रंग के पार देख सके की शबीहें 'सिटर' से समानता दिखाने के बजाय भविष्य मूलक अधिक लगती है। जहां तक उनकी हाल ही की चित्र श्रृंखला म्यूटेशन्य का संबंध है, इन चित्रों के बारे में उनका कहना है—यह उसी बिंब को लेकर निर्मित है जो पहले देखा जा चुका है, इसमें वही स्त्री है जो पांच बार अलग तरीकों से परिवर्तित होती है। एकदम स्थिर आकृति से शीर्षहीन आकृति में बदल जाती है। हालांकि शीर्ष का आभास वहां है। म्यूटेशन्स के बारे में मुख्य बात यह है कि इसमें कुछ भी रेखिक आख्यान के रूप में नहीं है। वह इन सभी अवस्थाओं में विद्यमान है और निरंतरता में विद्यमान है। अंजलि की नारी आकृतियां उनके स्वप्नों के प्रतीकों में बदल जाती है।[7]

[illegible] – अंजलि इला मेनन (1978)

अंजलि के यहां ऐसी कृतियों भी बहुत है जिसमें बचपन की स्मृतियां और गुजर चुके जीवन की गहरी यादों को दर्ज किया गया है। 'कुर्सियां, चारपाई, विस्तृत नीला आकाष, दूरियां, गुब्बारे और पतंगों' के माध्यम से अंजलि अपने अतीत को खोजती है और तब उन्हें गिरती दिवारें, टूटे हुए खिलौने हाथ लगते हैं जो गुजरे अतीत का यादों को एक दुख में बदल देते है। अंजलि ने कम्पयूटर की छवियों पर भी काम किया है। संस्थापन भी बनाए है, अप्रतिम चित्र भी खीचें हैं तो कोलाज भी निर्मित किये है, पर हर जगह उनकी अपनी कला की छाप दिखाई देती है। वे केवल कैनवास पर काम नहीं करती। पैनेल, लकड़ी के कपबोर्ड लकड़ी की खिडकियां, अलमारी जैसे माध्यम भी उनकी कला की अभिव्यक्ति के साधन बनते हैं। एक पेंटर के रूप में ऐसी प्रायोगिक विविधता दूसरे कलाकारों में नहीं मिलती। इसी तरह उन्नीसवी शताब्दी में प्रकाश में आई तन्जौर चित्रकला की पद्धति और मिथकीयता को भी अंजलि ने आधुनिकता में निबह कर अपनी कला को नये परिप्रेक्ष्य में ढाला है। आज के बाजारवाद पर एक कलाकार के रूप में वे तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। हर चीज को भोड़ा, विकृत और बिक्री योग्य बना देने की प्रवृत्ति पर वे कटाक्ष करती है। कला को उसकी मूल चेतना सहित सुरक्षित रखने की जरूरत पर जोर देती हुई वे स्वयं जिस सर्जन परम्परा को विकसित कर रही है वह हर तरह से अनुकरणीय है। भारत की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक एकल प्रदर्शनियां कर चुकी अनेक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान भी मिले हैं। समाकलीन भारतीय कला में एक मूर्घन्य कलाकार के रूप में स्वयं को स्थापित कर अंजलि ने समकालीनता को नया अर्थ दिया है तथा भारतीय स्त्रियों को भी एक वैचारिक भूमि दी है। अंजलि की कला की अद्वितीयता उनके इसी अवदान में है जिसकी चर्चा के बिना समकालीन भारतीय कला का मूल्यांकन अधूरा है।[8]

संदर्भ ग्रंथ

1. डा0 अर्चना रानी, कला दिशा, आनन्द पब्लिकेशन्स मेरठ, पृ0 111
2. अंजलि इला मेनन, केट लोग, सीमरोजा आर्ट गैलरी मुंबई, पृ0 1
3. समाकलीन कला अंक नवम्बर 2005, फरवरी 2006, ललित कला अकादमी रवीन्द्र भवन नई दिल्ली, पृ0 34–35।
4. अंजलि इला मेनन, केट लाग, सीरोजा आर्ट गैलरी मुंबई, पृ0 1
5. समकालीन कला, अंक नवम्बर 2005–फरवरी 2006 ललित कला अकादमी रवीन्द्र भवन नई दिल्ली, पृ0 37

Mk- cchrk "kekZ
असिस्टेंट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
आई. एन. पी.जी. कॉलेज,
मेरठ

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

Ekkyok y?kq fp= "kyh e oL=kdu

मालवा में परमार राजपूतों का राज्य था और उनकी राजधानी धार थी। सर्वप्रथम अलाउद्दीन मालवा दिल्ली सल्तनत का अंग बना रहा। तैमूर के आक्रमण के पश्चात जो अव्यवस्था फैली, उसका लाभ मालवा के सूबेदार दिलावर खां ने उठाया और वह स्वतन्त्र शासक की तरह व्यवहार करने लगा। किन्तु उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। दिलावर खां की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र होशंगशाह गददी पर बैठा। धार के स्थान पर मांडू को उसने अपनी राजधानी बनाया। यह एक वीर साहसी शासक था और उसका अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ।

1435 ई0 में होशंगशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र गाजी खां सुल्तान बना। उसके उदार शासन में हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों का समन्वय हुआ। उसने चित्रकला में भी समन्वयात्मक मार्ग निकाला। साथ ही अवधी कवि मुल्ला दाऊद कृत चौदहवीं सदी की एक रचना ''लौरचन्दा'' तथा संस्कृत कवि विल्हण कष्त ''चौरपंचाशिका'' नामक प्रेमाख्यानक काव्यों का चित्रण संभवतः यही पर बाज बहादुर के समय हुआ। इन ग्रंथों के चित्रों की आकृतियाँ एवं चित्र योजना अपभ्रंश शैली के आरम्भिक रा. जस्थानी शैली में परिवर्तन के समय गुजरात, राजस्थान एवं जौनपुर में मिलने वाली विशेषताओं से युक्त है।

जहाँ मालवा का सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्व था वही वस्त्रों के अंकन में भी पीछे नहीं रहा।

Ekkyok d fp=k e fL=;k d oL=k dk vdu

मालवा में ग्यारह प्रकार के स्त्रियों के वस्त्रों का अंकन मिलता है। जैसे– पगड़ी, चोली (अंगिया), जामा, पटका, शेरवानी, साड़ी, ओढ़नी (चूनर), लहंगा, लांगदार धोती, धोती, चुस्त पायजामा आदि।

मालवा में स्त्रियों के सिर पर पगड़ी का चित्रांकन किया गया है जैसे नियामतनामा के चित्रों में अंकित नारियां हैं।

मालवा के सभी भागवत पुराण के चित्रों में ऊँची चोली का अंकन मिलता है। रामायण के चित्रों में भी स्त्रियों को ऊँची चोली में दर्शाया गया है। रागमाला, बसन्तराग व गुनकली में बगल से बंधने वाली चोली का अंकन मिला है।

चौरपंचाशिका के चित्रों में भी स्त्रियों को बगल से बंधने वाली चोली का अंकन मिला है और सभी रागमालाओं में ऊँची चोली का चित्रांकन किया गया है।

आवासरी रागिनी में मोर पंखी युक्त चोली को दर्शाया गया है।

रसिक प्रिया के चित्रों में भी ऊँची चोली का चित्रण मिलता है।

मालवा के चित्रों में स्त्रियों के जामे का चित्रण नियामतनामा व बोस्तां के चित्रों में देखने को मिलता है।

पटके का भी मनोहारी रूप से नियतनामा व बोस्तां के चित्रों में अंकन मिलता है।

मालवा के चित्रों में पारदर्शी साड़ी को ओढ़नी की भांति दर्शाया गयी है। जैसे– अमरूशतक, भागवतपुराण, रागमाला, रसिक प्रिया, रामायण आदि के चित्र।

मालवा में पारदर्शी ओढ़नी चौरपंचाशिका के चित्रों में दर्शाया गयी है।

लौरचंदा के चित्रों में भी ओढ़नी (चूनर) का अंकन मिलता है।

मालवा के चित्रों में स्त्रियों को पटटीदार लहंगा व बूटीदार लंहगे का अंकन मिला है।

अमरूशतक में भी पटटीदार लंहगे का अंकन मिला है।

लांगदार धोती का चित्रांकन चौरपंचाशिका के चित्रों में देखने को मिला है।

शेरवानी का चित्रण लौरचन्दा के चित्रों में स्त्रियों को भी दर्शाया गया है और कही भी शेरवानी का अंकन देखने को नहीं मिला है।

मालवा के सभी कल्पसूत्र चित्रों में धोती का अंकन मिलता है जो सबसे अलग दर्षष्टि गोचर होती है।

चुस्त पायजामा का भी अंकन चित्रों में देखने को मिलता है। जैसे– लौरचन्दा व नियातनामा के चित्रों में।

Ekkyok d fp=k e i:'kk d oL=kdu

मालवा में सात प्रकार के पुरूषों के वस्त्रों का अंकन मिलता है। जैसे– पगड़ी, दुपटटा, जामा, शेरवानी, पटका, अधोवस्त्र धोती, चुस्त पायजामा आदि का अंकन मिलता है।

मालवा में पुरूषों के सिर पर पगड़ी का चित्रांकन किया गया है। जैसे– नियतनामा में भी पगड़ी का अंकन मिलता है।

मालवा के चित्रों में पुरूषों के वस्त्रों में पारदर्शी दुपट्टे का अंकन मिला है। जैसे– चौरपंचाशिका, कल्पसूत्र, भागवतपुराण, रामायण, रागमाला, रसिकप्रिया आदि।

मालवा के चित्रों में कम घेरदार के पारदर्शी जामे का अंकन मिला है। रसिक प्रिया में भी इस तरह के जामों का चित्रण मिला है।

नियामतनामा व बोस्तां के चित्रों में भी नीचे तक पुरूषों को जामों का चित्रांकन किया गया है। यहां पर पारदर्शी जामा नहीं दर्शाये गये है।

शेरवानी का भी चित्रांकन लौरचंदा के चित्रों में चित्रित किया गया है।

मालवा के सभी चित्रों में कमर के पटके का सुन्दर ढंग से चित्रांकन किया गया है जो सभी चित्रों में अधिकतर देखने को मिलता है।

मलवा के सभी चित्रों में कृष्ण जी के अधोवस्त्र धोती में अंकित किया गया है। जो सभी चित्रों में देखने को मिलता है।

मालवा के चित्रों में चित्रित पुरूषों का पारदर्शी जामों के नीचे चुस्त पायजामों को दर्शाया गया है। अधिकतर चित्रों में देखने को मिलता है।

मालवा के चित्रों में चित्रित वस्त्रांकन इस तरह दर्शाये गये।

''लौरचंदा'' के चित्रों में स्त्री व पुरूषों को शेरवानी वस्त्रों में अंकन किया गया है। स्त्रियों के तिकोने आंचल के छोर इनके चित्रों की प्रमुख विशेषता रही है। स्त्रियों के चित्रों में अधिकाशतः ओढ़नी को भी पारदर्शी चित्रित किया गया है। जिससे नायिका की सुन्दरता में चार चांद लग जाते हैं। लौरचंदा नारी के वस्त्रों के चित्रण में नग्नता का आभास नहीं हुआ है। बगल में बंधी अचकन स्त्रियों के शरीर पर शोभायमान है उसके स्तन भाग एवं बाहों पर विशेष प्रकार के अभिप्राय से वस्त्रों को सुसज्जित किया गया है।

लौरचंदा के चित्रों में भिन्न भिन्न प्रकार की ओढ़नी का चित्रण किया गया है। कहीं कहीं बुंदकीदार ओढ़नी देखने को मिलती है, तो कहीं साधारण किनारी वाली ओढ़नी को बड़ी ही सुंदरता से दर्शाया गया है। जो दर्शक की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करती है। लौरचंदा के चित्रों में स्त्रियों ने कहीं कहीं सादा अचकन तथा बिन्दियां जैसा चुस्त पायजामा भी पहना है और नीचे तक पटके का अंकन किया गया है।

एक स्त्री की ओढ़नी बगल से निकलकर बाये पैर को छूती हुई लहरा रही है। परन्तु इसकी तुलना में दूसरी स्त्री की ओढ़नी बाजू तक ही चित्रित है। स्त्री आकर्षतियों में फून्दनों का प्रयोग काफी किया गया है। ये फून्दनों अपेक्षाकष्त बहुत बड़े तथा अलग ढंग के है। स्त्रियां काले बड़े फून्दनों से बोझित लगती है।

लौरंचदना पुरूषों में चित्रित चैकदार शेरवानी चुस्त पायजामा, पटका, कूल्हेदा. रवाली अटपटी पगड़ी मुख्य रूप से चित्रित है। किसी केसी पुरूष आकृति में सादा अचकन पायजामा अंकित किया गया है। किसी किसी पुरूषों ने पारदर्शी शेरवानी तथा बुंदकीदार शेरवानी पहनी है। सि पर पगड़ी पहने हुए है– जिसमें पीछे की ओर कुछ कपड़ा निकला हुआ है। कुछ सादा पगड़ी पहने हुए है। लौरचंदा के चित्रों में सैनिक तथा राजा के वस्त्रों में भिन्नता दिखायी गयी है। सैनिक को साधारण वस्त्रों में चित्रित किया गया है तथा सिर पर भी साधारण पगड़ी बंधी है। राजाओं ने अलंकृत सादा शेरवानी व पायजामा धारण किया हुआ है।

इस समय का कलाकार वास्तव में कला का पारखी रहा होगा। जो लौरचंदा के चित्रों में वे अपनी तूलिका चलाने में कुशल होगें।

मालवा में चित्रित ''चौरपंचाशिका'' के चित्रों में झीने कपड़ें का अंकन इसकी विशेषता है। चाकदार जामा, पायजामा, पटका, कूल्हेवाली अटपटी पगड़ी पुरूषों की पगड़ी कसकर बंधी हुई चारों ओर से घेरे हुए चित्रित की गयी है। कुछ पुरूष पारदर्शी जामा पहने हुए है।

चौरपंचाशिका के चित्रों में स्त्रियों को लांगदार धोती, पटका, पारदर्शी ओढ़नी व चोली स्त्रियों का परिवेश था। स्त्रियों के तिकोने आंचल के छोर मालवा शैली के चित्रों का उत्कृष्ट रूप है। पारदर्शी ओढ़नी कुल्हेदार पगड़ी, आंचल के छोरों में फून्दनें जो दोनों कंधों के ऊपर भी दिखायी पड़ते हैं।

बगल से बांधी हुई स्त्रियों की चोली उसके स्तन भाग एवं बाहों पर विशेष प्रकार से चित्रित है। स्त्री बैठी हुई स्थिति में घाघरे में लगा पटका त्रिकोण रूप से बाहर को निकला हुआ है।

मांडू के कल्पसूत्र में चित्रित नारी व पुरूषों के वस्त्रों पर कलाकार ने विशेष ध्यान दिया है। नारी की वेशभूषा में उसके शरीर पर आवृत्त धोतियां चित्रित की गयी है जो अधिकाशतः श्वेत या स्वर्णिम चित्रित की गयी है। साथ में ही इन ध ाोतियों पर हल्के अलंकरण भी देखने को मिलते हैं। जिसमें अधिकतम सितारें के आकार के अलंकरण बनाये गये हैं जो दर्शक को एकाएक ही अपनी ओर आकर्षित

करने में सक्षम है।

कल्पसूत्र में कहीं–कहीं नारी की धोती रेखाओं से युक्त अंकित की गयी है। ध ोती की किनारी अलंकरण युक्त है, जो कलाकार की दक्षता का प्रतीक है। कल्पसूत्र के सम्पूर्ण चित्रों में हल्के बेल–बूटों का काम किया गया है, जो दर्शक की आंखों को शांति प्रदान करता है।

स्त्रियों को रंगीन धोती, चोली और चुनर से सुशोभित किया गया है। स्त्रियों की चोली भी धोती के अलंकरण जैसी बनाई गई है और कहीं–कहीं साधारण चोली का प्रयोग भी कलाकार ने किया है। कल्पसूत्र के चित्रों में कहीं–कहीं नारी पूरी बाजू तक चोली पहने हुए है। किसी किसी ने कोहनी तक चोली पहनी हुई है। नारी चित्रों में कही कही कलाकार ने पारदर्शी चुनरी का चित्रांकन भी किया है।

कल्पसूत्र के चित्रों में पुरूषों के वस्त्रों में प्रायः धोती की प्रधानता है, ये ध ोती सफेद रंग से चित्रित की गयी है और कही कही चित्रकार ने अनेक रंगों से भी इसको चित्रित किया है। इन धोतियों के ऊपर बुंदकी तथा सितारे की आकषति का अलंकरण भी बनाया गया है। कही कही सादी धोती का प्रयोग भी कलाकार ने किया है। कल्पसूत्र के चित्रों में पुरूषों के अर्धशरीर पर संभवतः किसी वस्त्र या जामा का अंकन कलाकार ने नहीं किया है।

मांडू के नियतनामा की आकृतियों के वस्त्र भी पूर्व परम्परा में हैं। इन चित्रों में नारी व पुरूषों को आकर्षक वस्त्रों से सुसज्जित दर्शाया गया है। इन चित्रों में पुरूषों को चाकदार जामा व पायजामा पहने हुए चित्रित किया गया है। कुछ चित्रों में वस्त्रों की आधी बाजू बनायी गयी है तथा इसके अतिरिक्त कुछ अन्य चित्रों में पूरी बाजू तक दर्शायी गयी है।

इन वस्त्रों की सिकुड़न एवं फहरान में स्वाभाविकता एवं सरलता परिष्कष्त रूप में देखी जा सकती है। नियामतनामा के चित्रों में पुरूषों की पगड़ी कान के उपर तक बनायी गयी है। कुल्हेदार साफा विशेष रूप से चित्रित किया गया है। जिसकी शोभा देखते ही बनती है जो दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करती है। चित्रों में कहीं कहीं सपाट पगड़ी तथा कहीं कहीं अलंकरण युक्त पगड़ी दर्शायी गयी है।

नियामतनामा के चित्रों में स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ही कूल्हेदार साफा तथा घेरदार जामा तथा कमर में लम्बा पटका धारण किये हुये है। ये जामा गोल गले का बनाया गया है। नारी के घेरदार जामे को अलंकरण युक्त बनाया गया है। किसी किसी को पीलेन तथा किसी का रेखाओं से युक्त किसी को हल्के धब्बेदार अलंकरण से दर्शाया गया है।

मांडू में चित्रित चित्र अमरूशतक में स्त्रियों और पुरूषों को विभिन्न प्रकार के

वस्त्र पहने दर्शाये गये है। इन चित्रों में नारी के वस्त्रों में ऊंची चोली पटटीदार घाघरा तथा उसके ऊपर झीनी साड़ी को बहुत ही मनोहर रूप से चित्रित किया गया है। इस झीनी साड़ी को ओढ़नी के रूप में पहनाया गया है।

अमरूशतक में चित्रित पुरूषों की वेशभूषा में चाकदार जामा विविध रूप से अंकित किया गया है। इस जामे का घेर कहीं ज्यादा है। तो कही कम चित्रित किया गया है। इसमें घुटनों तक की धोतीनुमा वस्त्र पटका है जो दोनों पैरों के बीच से लम्बा होता हुआ नीचे को दिखायी दे रहा है। ये पटका अलंकरण युक्त है। इनके सिर पर आवष्त्त पगड़ी छज्जेदार बनायी गयी है। जिस पर कही कहीं अलंकरण भी दिखायी देते है। पुरूषों की पगड़ी से सज्जनता वे शालीनता दृष्टिगोचर हो रही है।

भागवत पुराण के सभी चित्रों में वस्त्र इस तरह अंकित किये गये हैं। स्त्रियों के वस्त्रों में ऊंची चोली, पटटीदार घाघरा तथा झीनी साड़ी का चित्रांकन किया गया है। इन चित्रों में साड़ी को ओढ़नी की भांति सिर से पहनाया (ओढ़े) चित्रित किया गया है। भागवत पुराण के चित्रों में स्त्रियों ने रंग–बिरंगे लहगे पहने हैं। लहंगों में भिन्न भिन्न रंगों का प्रयोग हुआ है। अधिकाशतः इसमें पीले, लाल, काले व हरे रंगों का प्रयोग हुआ है।

भागवत पुराण के चित्रों में चित्रित कृष्ण जी की पोशाक में धोती का पहनावा विशेष महत्व रखता है। जिसका चित्रण कलाकार ने अधोवस्त्र के रूप में किया, जिसको पीताम्बर का संबोधन दिया गया है। श्यामल वर्ण वाले श्री कृष्ण के शरीर पर शोभायमान हो रहे है। कृष्ण जी के शरीर पर ये वस्त्र ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे सूर्य की रोशनी में कोई अमूल्य वस्तु शोभायमान हो रही हो। दर्शक अपने नेत्रों को चाहकर भी उनके शरीर से हटा नहीं पाते। भागवत पुराण के सभी चित्रों में पारदर्शी दुपट्टे का चित्रण किया गया है। इन सभी चित्रों में पुरूषों की कमर पीले रंग का तथा सफेद रंग का पटका बंधा है। चित्रों में कृष्ण जी के सखा अथवा ग्वालों को सफेद संकरा, लंबा कपड़ा धोती (लंगोटी) के रूप में पहने हुए चित्रित किया गया है।

'रागमाला' के चित्रों में स्त्रियों के वस्त्रों को बहुत ही सुन्दरता से अलंकृत किया गया है। इन चित्रों में कही कही पटटीदार ऊंची चोली नारी के सुगठित शरीर पर अत्यंत अकार्षक दिखायी दे रही है। रागमालाओं में स्त्रियों की चोली को कलाकार ने भिन्न भिन्न प्रकार से अंकन किया है। एक रंग की उंची व साधारण चोली, तो कही कही चित्रकार ने चोली की पीछे का पूरा भाग खुला अंकित किया है।

रागमाला के चित्रों में चित्रित स्त्रियों ने घेरदार लंहगा पहना है तो कहीं पट.

टीदार तथा कही कही साधारण दर्शाया गया है। लंहगों के उपर पारदर्शी व बुंदकीदार अलंकरण से अंकित साड़ी तथा कही साधारण पारदर्शी, रेखायुक्त साड़ी का चित्रण किया गया है। कही कही लंहगा चोकोर चैक वाला अंकित है और उसके ऊपर पारदर्शी साड़ी अंकित है। ये साड़ी सिर से लेकर पूरे लंहगे को आवष्त्त करती हुई चित्रित की गयी है।

'आसावारी रागिनी' के मूल स्वर सपेरों की बीन पर नाचने वाले नागों के आकर्षित स्वर होते हैं। आसावरी रागिनी के चित्रण में युवती ने मोरपंखनुमा छोटा घुटने तक घाघरा, चोली पहने हुये सर्प के साथ किलोल करती चित्रित की गयी है।

रागमाला में 'खम्बावली रागिनी' में पुरूषकृति अधोवस्त्र धोती व पटका, दुपटटा तथा चुस्त पायजामा, पटटीदार घाघरा बहुत छोटा दर्शाया गया है। नारियों का लंहगा चौकोर चैक व गोल आकृति व रेखायुक्त पाया गया है। लंहगे के उपर पारदर्शी साड़ी तथा चोली बगल में बांधने वाली दर्शायी गयी है।

'रसिक प्रिया' के चित्रों में चित्रित स्त्रियां और पुरूषों को विभिन्न प्रकार के वस्त्र अलंकष्त किये गये है। रसिक प्रिया के चित्रों में पुरूषों को पारदर्शी गोल घेरदार घुटनों तक जामा, कही कही नीचे तक जामा, चुस्त पायजामा, पटका व दुपटटा और कष्ष्णजी को अधोवस्त्र के रूप में कही कही पर अंकन किया गया है।

कष्ष्ण जी मोर मुकुट की जगह पाग धारण किये रसिक शिरोमणि लगते हैं। कही कहीं राजपूती कलंगी पाग में धारण किये हुए हैं, यहां के चित्रों में झुकी हुई पगड़ी को अंकित किया गया है।

स्त्रियों की उंची चोली व पारदर्शी साड़ी है तो कही बूटीदार अलंकरण है तो कही साधारण पारदर्शी का अंकन किया गया है। लंहगों पर विभिन्न बूटियां व हल्की आड़ी पटिटयां होती है। स्त्रियों के तिकोने आंचल के छोर रसिक प्रिया के चित्रों का उत्कृष्ट रूप है। साड़ी की किनारी भारी व अलंकरण युक्त दर्शायी गयी है।

मालवा शैली में रामायण के चित्रों में चित्रित पुरूषाकृति व स्त्रियों के वस्त्र इस तरह पाये गये है। पुरूषों में पारदर्शी लम्बा, जामा, चुस्त पायजामा, पारदर्शी दुपटटा, पटका, अधोवस्त्र या लंगोटी को भी चित्रों में दर्शाया गया है। हनुमान के सिर पर पगड़ी का अंकन किया है। कही उपर को उठी हुई पगड़ी है तो कही नीचे को दबी हुई चित्रित की गयी है।

स्त्रियों की चोली, पटटीदार घाघरा व कही साधारण घाघरा और घाघरे के उपर पारदर्शी अलंकरण साड़ियों का कहीं–कहीं साधारण अंकन किया गया है।

l nHk xFk l ph

1. डा0 ओम प्रकाश सिंह, मध्य कालीन भारत, पृ0 सं0 152।

2. डा0 कालू राम शर्मा, डा0 प्रकाश व्यास, जयपुर, भारतीय कला का सर्वेक्षण, पृ0 सं0 200।
3. डा0 इरविन, भारतीय मुगलों की सैन्य व्यवस्था, पृ0 सं0 125।
4. मधु प्रसाद अग्रवाल, मारवाड़ की चित्रकला, पृ0 सं0 22।
5. खण्डालावाला, कार्ल एवं मोती चन्द्र, उपर्युक्त, 1969, फिगर 48, 51, 52, 54।
6. वही, पृ0 48, 51, 52, 54।
7. राय कष्ष्ण दास ''एन इलेस्ट्रेटेड अवधी मैनुस्क्रिप्ट ऑफ लौरचन्दा इन द भारत कला भवन'' ललित कला, न0 1–2, नइ दिल्ली, 1955–56, प्लेट इ, फिगर ए, तथा 1, 4 पृ0 सं0 62।
8. डा0 आनन्द कष्ष्ण, मालवा पेंटिग, बनारस प्लेट 28।
9. डा0 आर ए अग्रवाल, कला विलास पृ0 सं0 93।
10. मोती चन्द्र 'उपर्युक्त अहमदाबाद 1949, फिगर 85, 1954, पृ0 सं0 155, 160।
11. शाह यू0पी0 'मोर डोक्यूमेंटस ऑफ जैन पेटिंग एंड गुजरात पेंटिग आफ सिक्सटीथ एंड लेटर सेचुरीज, अहमदाबाद, 1976।
12. कार्ल खंडालावाला एवं जगदीश मिततल ललित कला, नई दिल्ली, वोल्यूम 16, पृ0 16, 20।
13. डब्ल्यू0 जी0 आर्चर, इंडियन पेंटिग, लंदन, पेज 5।
14. आर0 वी0 सोगानी, हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पेज नं0 352।
15. आर0 वी0 गोडे, इल्स्ट्रेटेड मैन्युक्रिफट आफॅ भागवत पुराण न्यू इंडिया उन्टीक्लापरी, पृ0 1,4, ज10 1938।
16. डा0 रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय चित्रकला और मूल तत्व, पृ0 सं0 36।
17. सिटी पैलेस, आर्ट गैलरी, जयपुर, चित्र नं0 ए0 जी0 554 से 559।
18. क्लॉज इबलिंग, रागमाला पेंटिग, पृ0 29 व 31 पर प्रकाशित चित्र।

कु. नीतू
अंशकालिक प्रवक्ता
आई.एन.पी.जी. कॉलेज,
मेरठ

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

संस्थापन कला में सुबोध गुप्ता का योगदान

भारतीय कला में आधुनिकता की शुरूआत तो तभी हो गयी थी जब भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आगमन हुआ था, तब वहां के कुछ कलाकार भी यहां आये थे तथा पश्चिमी तकनीकी को भारतीय कला में मिलाने का प्रयास किया गया। भारतीय कला में पश्चिमी तकनीक का प्रयोग करने वाले प्रथम कलाकार राजा रवि वर्मा थे जिन्होंने सबसे अधिक व्यक्ति चित्र बनाये जिनमें पश्चिमी तथा यूरोपियन तकनीकों का प्रयोग किया गया। यहां के अधिकतर कलाकार पश्चिमी शैली को ग्रहण करने लगे किन्तु उनमें भारतीयता की झलक दिखाई देती थी। पाश्चात्य चित्रण में यथार्थवादी वास्तविकता से प्रेरित, उभार, गहराई, छाया प्रकाश, वर्ण–विधान, कलर वॉश, आदि का भारतीय कला पर प्रभाव पड़ा।

चित्रकला को आधुनिक बनाने के साथ–साथ भारतीय मूर्तिकला में भी आधुनिकता का प्रवेश हुआ, जिसमें प्रकृति के अनुरुप तथा उसमें आसानी से ढ़लने वाली सामग्री से मूर्तिशिल्प तैयार किये गये। भारत में मूर्तिकला को आधुनिक बनाने का श्रेय कई महान कलाकारों को जाता हैं, जिनमें रामकिंकर बैज, डी.पी.राय चौधरी, शंखो चौधरी, धनराज भगत, मीरा मुखर्जी इत्यादि हैं। छापाकला जैसी अति आधुनिक तकनीक को बनाने का श्रेय कृष्णा रेड्डी, लक्ष्मा गौड़, सोमनाथ होर, अनुपम सूद तथा ज्योति भट्ट जैसे कलाकारों को जाता है। आज के समय में भारतीय आधुनिक कला अपने चरम पर हैं, जिसमें नये–नये कलाकार नई तकनीकों का आविष्कार कर रहे हैं तथा उनका क्षेत्र इतना व्यापक हो गया हैं कि विदेशों में भी वे विख्यात हो रहे हैं। भारतीय आधुनिक कला आज किसी परिचय की मोहताज नहीं है। आज पूरे विश्व में भारतीय कला तथा उसमें कार्य करने वाले अत्याधुनिक कलाकार विश्व प्रसिद्ध हो चुका है तथा आगे आने वाले नये कलाकार इस दिशा में चलने के लिये प्रयासरत हैं।

उदारीकरण के बाद भारत में कई कलाकरों ने अन्तर्राष्ट्रीय कला बाजार में खुद को स्थापित किया है। जिसमें अनीश कपूर, सुबोध गुप्ता आदि कलाकरों ने अपना

विशाल आकार की कलाकृतियों के साथ सभी दर्शको को अपनी तरफ आकृर्षित किया। इनके अलावा चिमन डांगी, भूपत डूडी, पियु सरकार, बगाराम चौधरी, अमिताभ सैन गुप्ता आदि कई भारतीय कलाकरों का कार्य भारत के साथ–साथ विदेशी कला दीर्घाओं में प्रदर्शित किया गया। इससे भारतीय कलाकारों का प्रचार प्रसार विदेशों में भी हुआ तथा इनकी कला के प्रशंसक भी बढ़ गये।

यह नितान्त सत्य हैं कि आज भी कलाकार पूर्णतः समाज से जुड़ा हुआ हैं, यद्वपि भारतीय आधुनिक कला में उसका विषय क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो चुका हैं। आज कलाकार अपनी कलाकृर्तियों में नये रुपों, नये रंगों का प्रयोग करके अपनी भावनाओं तथा जनसाधारण को सन्देश देते हैं। भारतीय आधुनिक कला आज सिर्फ आधुनिक न रह कर तकनीकी आधार पर भी आधुनिक हो चुकी है।

आधुनिक कलाकार इन्सटॉलेशन के माध्यम से भी अभिव्यक्ति कर रहा है। इन्सटॉलेशन के द्वारा किसी भी वस्तु द्वारा अपनी बात समाज तक पहुंचाने की स्वतन्त्रता होती है। कलाकार ने टेक्सचर में भी विभिन्न बदलाव कर जनता तक सन्देश पहुंचाने का प्रयत्न किया। कलाकृति में रंग भरने से पूर्व जूट, लाख, फैवीकोल, बालू, बुरादा, थरर्माकोल जैसे अनगिनत वस्तुओं को चित्रतल पर लगाकर कलाकृतियों में विभिन्न प्रभाव उत्पन्न किये।[1]

आधुनिक कला में धीरे–धीरे भारतीय कलाकारों को नये प्रयोगो द्वारा कलाकृति निर्मित कर समाज सम्प्रेषण की नई राह मिली। आधुनिक भारतीय कलाकारों ने टैराकोटा तथा फाईबर ग्लास का अद्भुत समन्वय करके जो कला कृर्तियां निर्मित की उनसे दर्शक सहज ही उनकी ओर आकृर्षित हो गया। कलाकार ने अपनी भावनात्मक अभिव्यक्ति को अपने आस पास की उपयोगी, अनुपयोगी वस्तुओं को कलाकृति में संयोजित कर नई रचनाओं को जन्म देने के साथ–साथ समाज से सम्पर्क स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया।[2] इसके अतिरिक्त आधुनिक भारतीय कलाकार के मस्तिक में जो भी माध्यम आया उसका प्रयोग वे अपनी अभिव्यक्ति के लिये करने लगे।

भारतीय कलाकारो ने अपने सन्देश को दर्शक तक पहुंचाने के लिए नवीन प्रयोग किए जिससे आधुनिक कला को नई दिशा मिली। आधुनिक भारतीय कला का अर्थ आज पूर्णतः बदल चुका है। आज कलाकार कम्प्यूटर कला के माध्यम से समाज से जुड़ा है और कला को समृद्धशाली बनाने में कार्यरत है। कलाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए तैल रंगों में तैल की मात्रा बढ़ाकर रंगों को बहाकर या मोटे–मोटे थक्कों के रूप में कलाकृतियों में प्रयोग कर समाज तक सन्देश पहुंचाने की नयी दिशा में खोज की।[3] वस्तुतः यही कहा जा सकता है इसी कारण भारतीय आधुनिक कला में

कलाकार का उद्देश्य, सन्देश, मान्यता माध्यम परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु उनका सम्बन्ध समाज से ही रहता है। आज प्रत्येक कलाकार की स्वंय की परिभाषा है वह न तो किसी विषय, किसी नियम किसी माध्यम से बंधा है और न ही खुद को एक सीमित दायरे में रखकर अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता हैं। आज भी भारतीय कलाकार नई–नई आधुनिक तकनीकों की खोज में लगे हैं जिससे भारतीय कला में नए आयाम लिखें जाएंगें।

सुबोध गुप्ता भारतीय आधुनिक कला के एक महान् कलाकार हैं। संस्थापन कला को अपनी कला विधा के रूप में अपनाने वाले गुप्ता ने भारतीय कला को नये आयाम दिए हैं। उन्होंने नब्बे के दशक में अपनी कला शिक्षा बिहार प्रान्त के पटना जिले के कला विद्यालय से की, इनकी रूचि रंगमंच में भी थी जहाँ इन्होंने बतौर अभिनेता अभिनय भी किया तथा रंगमंच के सैट भी डिजाइन किए। उन्होंने अपनी कला का आरम्भ पेटिंग से किया। इन्होंने प्रयोगधर्मिता के युग में स्वयं को प्रतिष्ठित करते हुए संस्थापन कला में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। आज वे संस्थापन कला के विदेशी कला बाजार में भारत के प्रतिनिधि कलाकार माने जाते है।

इन्होंने 2005 में वेनिस बिनाले नामक द्वैवार्षिकी अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में अपने संस्थापन को प्रदर्शित किया और वहाँ भारतीय संस्थापन कला को एक विशिष्ट पहचान दिलाई। वे स्वयं को भारतीय मध्यमवर्गीय परिवारों से जोड़ते हुए उनमें प्रयोग होने वाले स्टील के बर्तनों को अपने संस्थापनों में विशेष रूप से प्रयोग करते है उन्हें अपनी कल्पना शक्ति के बल पर अनेकों रूपों में प्रयुक्त करते हुए सजीव प्रभावशाली कलाकृति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने आर्ट समिट 2011 में साइकिल रिक्श पर ढ़ेरों पानी के लोटे लादकर एक अनूठे संस्थापन का प्रदर्शन किया कलाकार ने गरीब अमीर सभी की आवश्यकता जल पर सबका ध्यान केन्द्रित कराया या यह भी कहा जा सकता है कि पूरे विश्व में फैले जल के संकट या पानी की महत्ता से सभी को अवगत कराया। इस समस्या की तरफ कलाकार ने अपने ही ढंग से व्यंग प्रस्तुत किया।

इन्होंने अपनी संस्थापन कला में पेटिंग, मूर्तिशिल्प, वीडियोग्राफी तथा इलैक्ट्रॉनिक प्रभावों का मिश्रण किया। सुबोध गुप्ता ने भारतीय जनजीवन में रोजमर्रा की काम आने वाली वस्तुओं जैसे एल्युमिनियम की केतली, दूध के डिब्बे, एम्बेसडर कार, बिहार में व्याप्त हिंसा के प्रतीक के रूप में देसी पिस्तौल का प्रयोग भी अपने संस्थानों में करा है। इनकी विशेषता ही यह है कि वे अपने मूल से जुड़े हुए कलाकार हैं। इन्होंने भारतीय जीवन के साथ जुड़कर ही अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर कला प्रेमियों से सम्प्रेषण स्थापित किया है। टाईम्स ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित होने वाली देहली टाईम्स

के 22 अगस्त 2011 को सुबोध गुप्ता की कृति 'अलीबाबा' जो कि paris pompidou centre के एक आर्ट शो में प्रदर्शित हुई, जहां न केवल उनकी कृति की भूरि–भूरि प्रशंसा हुई बल्कि भारतीय संस्थापन कला को अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी इस कलाकार को प्राप्त हुआ।[4] सुबोध गुप्ता अपनी कला और उनकी बुनियादी चिन्ताओं में जितना 'स्थानीय' होते चले गए उतना ही वे सार्विक भी हो गए। इनकी कला आत्म प्रदर्शन पर आश्रित नहीं है, वरन् इनकी चिन्ताएं अधिक अर्थपूर्ण और गहरी है।

समकालीन कला की बात बिना इस कलाकार के पूर्ण नही हो सकती। इनका कार्य सभी नीलामी घरों में अच्छे तथा उच्च दामों पर बिका है। सुबोध गुप्ता को इतनी ख्याति इस वजह से भी मिली हैं, क्योंकि यह वह व्यक्ति हैं, जिसका काम आलोचक तथा व्यवसायिक तौर पर भी पसन्द किया गया।

भारतीय आधुनिक कला में इतने प्रयोग हुए कि आज के कलाकार उन्हीं प्रयोगों को और अधिक सफल बनाने में जुटा है। कलाकारों के नित नये प्रयोगों के कारण भारतीय आधुनिक कला को नया नाम दिया गया, जिसे भारतीय समकालीन कला का युग माना गया गया और आज इस समकालीन युग के कलाकरों ने और अधिक तकनीकों को विकसित कर कला को नये आयाम दिये है, जिनमें संस्थापन कला का नाम विशेष प्रसिद्व हैं। आधुनिक कला जगत में संस्थापन कला अपनी एक विशिष्ठ पहचान बना चुकी हैं। आधुनिक कलाकार प्रयोगधर्मी है। वे अपने आस–पास के वातावरण, वस्तुओं से प्रभावित होकर उन्हें अपनी कला में प्रदर्शित करते हैं। भारतीय समकालीन कलाकारों में लतिका कट का नाम यूँ तो प्रसिद्व मूर्तिकारों में शुमार है, परन्तु उनके मूर्तिशिल्प मणिकर्णिका घाट थाली को देखकर मुझे संस्थापन का सा भ्रम हुआ। उनकी इस कृति को देखकर लगा कि हम किसी संस्थापन कलाकृति को देख रहे हैं। कहने का अर्थ यह हैं कि कलाकार चाहे किसी भी माध्यम में काम करें, संस्थापन कला का आर्कषण उन्हें अपनी ओर खींच लेता है। प्रयोगधर्मी कलाकार अपने माध्यमों को लेकर जोखिम उठाते ही रहते हैं।

संस्थापन कला के क्षेत्र में विकसित किया गया ऐसा प्रयोग हैं, जिसे आज भारतीय कलाकारों ने पूर्ण रुप से अपना लिया हैं तथा इस कला से देश में ही नही, विदेशों में भी ख्याति प्राप्त ही है। मनुष्य के जन्म के साथ ही एक कला का भी जन्म होता है कलाकार अपनी कला में कुछ वही मौन अभिव्यक्ति करता है जो उसके चेतन अचेतन मन में कहीं न सुरक्षित व संरक्षित रहती हैं जिनकी अभिव्यक्ति कलाकार किसी न किसी माध्यम से करता रहता है। औद्योगिक और वैज्ञानिक सभ्यता के तीव्र विकास में मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क को बड़ी गहनता

से आन्दोलित किया है। व्यक्तिगत, अति मानसिक विधाओं, बिम्बों, नये–नये मुहावरों और साहसिक प्रयोगों ने सारे कला क्षितिज को ही बदल डाला है। कला के नये मानदण्ड, नई परिभाषाएं चारों ओर उभर रहे है।

नये वादों ने आकार अभिव्यक्ति के माध्यमों को नई भाषा प्रदान की हैं जिसमें प्रत्येक कलाकार की अपनी निजी शैली तो हैं ही साथ ही अभिव्यक्तिकरण की नीति नवीन विधाएं भी प्रचलित हुई हैं, इन्हीं मे से एक है संस्थापन कला। इस कला का अर्थ यह हैं कि वह कला जो अपने प्रदर्शन के स्थान पर निर्मित या अधिष्ठापित की जाये।[5]

हमारे देश में अनेकों कलाकारों ने इस विधा को अपनाया है जिसमें भारत के वरिष्ठ महान कलाकार स्व0 एम.एफ हुसैन, अमरनाथ सहगल, सतीश गुजराल, विवान सुन्दरम्, वेद नायर, गोगी सरोजपाल, रत्नावली कान्त आदि ने संस्थापन को अपनी कला में विधास्वरुप अपनाया। इन प्रतिष्ठित कलाकारों के अलावा शमशाद हुसैन, लतिका कट्ट, शहबा, एन. पुष्पमाला, सोमान, राजेन्द्र टिक्कू, वाल्सन कोलरी, एन.एन. रिमजान, शीला गौड़ा, नरेश कपूरिया, अर्पणा कौर, रुम्मन हुसैन, सुबोध केरकर व सुबोध गुप्ता आदि कलाकारों की श्रृंखला की श्रृंखला हैं, जिन्होंने संस्थापन कला को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में चुना है। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् नये कलाकारों ने कला में प्रयोगवादिता को अपनाया तो उन्होने संस्थापन कला की ओर भी रुख किया।

आधुनिक कला के उपादानों में संस्थापन कला अपना विशिष्ट, वैशिट्य के साथ उभरी हैं, जिसमें प्रयोग की अपार सम्भावनाएं हैं। जहां कलाकार केवल रंग तूलिका कैनवास का ही मोहताज नहीं रहा है, अपितु वह अपने परिवेश में उपलब्ध प्रत्येक वस्तु को कलाकृति के रुप में प्रस्तुत कर रहा हैं, जो कि उसकी कल्पना शक्ति एवं कुशलता पर निर्भर करती है। आज पश्चिम में कला का अन्त घोषित कर दिया हैं यानि परम्परागत केनवास या मूर्तिशिल्प को अभिव्यक्ति का सही माध्यम नहीं माना जाता है। ऐसे लगभग कला विरोधी माहौल में अपनी कला अभिव्यक्ति की अलग पहचान बनाना सरल नही है। ऐसे में संस्थापन के कलाकार प्रचीन ललित कला के माध्यमों को छोड़कर अभिव्यक्ति के लिये जटिल संसाधनों को प्रयोग करके अर्थपूर्ण कलाकृतियां निर्मित कर रहे हैं।

संस्थापन कला को अपनी कला विधा के रूप में अपनाने वाले सबसे प्रसिद्ध कलाकार सुबोध गुप्ता है जिन्होंने भारतीय कला को नये आयाम दिए हैं। इन्हा. ने प्रयोगधर्मिता के युग में स्वयं को प्रतिष्ठित करते हुए संस्थापन कला में अपनी

विशिष्ट पहचान बनाई। आज वे संस्थापन कला के विदेशी कला बाजार में भारत के प्रतिनिधि कलाकार माने जाते है। उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति के बल पर अनेकों ऐसे अदभुद कलाकृतियों का निर्माण किया जिन्हें देखकर दर्शक भौचक हो जाते है। इनकी विशेषता ही यह है कि वे अपने मूल से जुड़े हुए कलाकार हैं। इन्होंने भारतीय जीवन के साथ जुड़कर ही अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर कला प्रेमियों से सम्प्रेषण स्थापित किया है।

सुबोध गुप्ता ने साधारण वस्तुओं जैसे स्टील बर्तन, टिफिन बॉक्स, पैन, दूध के डिब्बे और साईकिल आदि करोड़ों भारतीय जनता द्वारा प्रयोग की जाने वाली इन वस्तुओं को कला में प्रयोग करके उसे कलात्मक स्तर दिया है। सुबोध गुप्ता के कार्य से यह प्रतीत होता हैं कि वे अपनी बचपन की यादों को, अपनी जन्म भूमि से जुड़े हर एक सपने तथा वस्तुओं को भूल नहीं पाये हैं तथा वे इन्हीं का प्रयोग अपनी कला में करते है। इन्होंने अपने कार्य में आम भारतीय नागरिक की इच्छाओं, सपनों, संघर्षो को दिखाया हैं कि कैसे वह इन सबसे अपने व्ययों को चलाता है। सुबोध गुप्ता अपने कार्य में रोजमर्रा में शामिल वस्तुओं का प्रयोग करके अपनी कला को एक नया रुप प्रदान करते हैं।

सुबोध गुप्ता का कहना हैं कि ये सभी वस्तुएं मेरे बड़े होने तक मेरे साथ रही हैं और हमेशा रहेगी। ये सभी वस्तुएं हमारे रस्मों व समारोह आदि में सदैव प्रयोगों में आती है। मेरा मतलब यह हैं कि यह वस्तुएं हमारे सभी बुरे व अच्छे कार्यो में हमारे साथ होती है। मेरा मानना हैं कि जिस प्रकार भारतीय के लिये पूजाघर व मन्दिर होते हैं कि इसी प्रकार हिन्दुओं की रसोई भी एक पूजाघर हैं। सुबोध गुप्ता ने भारतीय दैनिक जीवन को विश्वस्तर पर ले जाने का कार्य किया हैं।[6] ये उभरते भारतीय कलाकारों के लिये एक प्रेरणास्त्रोत बने है कि कैसे ये अपने कार्य में दर्शाते हैं कि कैसे ईंधन आदि की बचत की जाती हैं तथा यह आर्थिक विकास को भौतिक रुप से बढ़ावा भी देते है। इनके कार्य को देखकर इन्हें "the damien hirst of delhi" कहा जाता है।[7] गुप्ता ने कला की एक नई परिभाषा ढूढ़ने में सफलता हासिल की है। जिसके लिये उन्हें दुनियाभर में प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। गुप्ता का कहना हैं कि कला कि सभी जगह एक ही भाषा है, जो मुझे कही भी आ जाने की अनुमति देती है।

इनके हाल ही के एक प्रमुख कार्य में जिसमें इन्होंने खाना पकाने के बर्तनों का प्रयोग करके एक विशाल संस्थापन बनाया, जिसे इन्होंने "line of control" नाम शीर्षक दिया। यह "tate triennial tate, britain, london" में 2009 में प्रदर्शित किया गया था।[8] सुबोध गुप्ता एक प्रसिद्ध चित्रकार भी है। पेटिंग भी सुबोध गुप्ता के कला

अभ्यास का महत्वपूर्ण हिस्सा रही हैं।

उनका श्रृंखला चित्र "still steal steel" जिसमें बर्तन को गिरते तथा हवा में उड़ते प्रदर्शित किया है। यह चित्र फोटोग्राफी तकनीक पर आधारित है।[9] अपनी प्रारम्भिक चित्रों में गुप्ता ने हर दिन इस्तेमाल किये जाने वाला तत्व ''गाय का गोबर'' भी प्रयोग किया है। यह भारत के घरों में निर्माण तथा खाना पकाने के लिये ईंधन के रुप में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा यह सफाई में भी प्रयोग आता है। ग्रामीण भारत में यह एक सफाई का जरिया तथा एक शुद्व तत्व माना जाता है। यह धार्मिकता में भी तथा प्रतीकात्मकता में भी प्रयोग होता है। गुप्ता की एक 09 मिनट की वीडियो सन् 2000 में गुप्ता ने नहाते हुऐ अपने पूरे शरीर पर गोबर का लेप कर रखा है।

गुप्ता ने चित्रों की एक चित्र श्रृंखला ''सात समुन्दर पार''[10] चित्रित की, जिसमें सामान, पलायन तथा घर वापिस लौटने की स्थायी चिन्ताओं को दर्शाया गया है। इस चित्र में यह दर्शाया गया हैं कि कैसे वह अपना सामान लेकर भारत से विदेश गये। इस चित्र में अपने ग्रह राज्य बिहार से अलग होने का दुख दिखाया गया है। 2009 में सुबोध गुप्ता का कार्य जिसमें उनके बनाये मूर्तिशिल्प थे, जो कि उच्चतम थे। इन्हें hauser & wirth में प्रदर्शित किया गया। सुबोध गुप्ता को तैयार वस्तुओं तथा बड़े पैमाने पर सामग्री परिवर्तनों का अनुभव था।

इनका प्रसिद्ध तेल चित्र ''सात समुन्दर पार'' सैफरन कला नीलामी घर में 3.4 करोड़ में बिका। 2008 में यह उन कलाकारों में से एक थे, जिन्होंने बिहार पीड़ितों के लिये धनराशि एकत्रित की थी।[11] सुबोध गुप्ता ने महात्मा गाँधी के तीन बन्दरों से प्रेरित होकर एक अन्य चित्र श्रृंखला बनाई जिसे भारत के साथ–साथ विदेशों में भी सराहा गया।

प्रयोगधर्मिता के युग में स्वयं को प्रतिष्ठित करते हुए संस्थापन कला में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले सुबोध गुप्ता है जो आज संस्थापन कला के विदेशी कला बाजार में भारत के प्रतिनिधि कलाकार माने जाते है। इनकी विशेषता ही यह है कि वे अपने मूल से जुड़े हुए कलाकार हैं। इन्होंने भारतीय जीवन के साथ जुड़कर ही अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर कला प्रेमियों से सम्प्रेषण स्थापित किया है। इन्होंने भारतीय जीवन के साथ जुड़कर ही अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर कला प्रेमियों से सम्प्रेषण स्थापित किया है।

आज वे संस्थापन कला के विदेशी कला बाजार में भारत के प्रतिनिधि कलाकार माने जाते है। उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति के बल पर अनेकों ऐसे अदभुद कलाकृतियों का निर्माण किया जिन्हें देखकर दर्शक भौचक हो जाते है।

संदर्भ ग्रन्थ

डॉ. प्रगति सिंघल
शोधार्थी
जैन अनुशीलन केन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

मानवाधिकार भारत के परिप्रेक्ष में

मानव होने के नाते मानवाधिकार लोगों को विरासत में मिले हैं। जिनसें उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता हैं। मानव अ़धिकार को नैतिक एवं कानूनी अधिकार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो मानवीय गरिमा को सुनिश्चित करता है। इसे कानून के माध्यम से स्थापित किया जाता है। इसके अन्तर्गत नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार भी आते है। मानवाधिकार राज्य से विधिमान्य अपेक्षाएं है। ऐसा माना जाता है कि राज्य मानवाधिकार का निर्माता और संरक्षक है।

मानवाधिकार को अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार बिल के रूप में कोडीकृत तथा परिभाषित किया गया है। इसके साथ–साथ इसमें विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं घोषणाओं का योगदान हैं। इसके विकास में वैधानिक प्रावधान प्रशासनिक आदेश तथा स्थानीय स्तर पर न्यायिक घोषणाओं का योगदान है।

भारत में मानवाधिकार की शुरूआत ब्रिटानी सरकार के विरूद्ध प्रारम्भ किया गया स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय से मानी जाती है। किन्तु यदि भारतीय इतिहास को गहराई से देखा जाय तो पता चलता है कि प्राचीन काल में मानव के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने वाले कई उदाहरण भरे पडे है।

सहनशीलता, उदारता और दया भारतीय परंपरा के अभिन्न अंग है। ऐसा सिर्फ भारत में होता आया है। अन्य देश इन गुणों को आचरण में ढालने में कामयाब नहीं हो सके। प्राचीनकाल से ही भारत दूसरे के धर्मो एवं संस्कृतियों का स्वागत करता रहा है।

वैदिक काल से ही भारत में सहनशीलता और दूसरे के आस्था का सम्मान करते हुए मानव अधिकार संरक्षण की परंपरा रही हैं। तथापि संहिताबद्ध कानून तथा न्याय में मानवाधिकार को अनिवार्य बाध्यता के रूप में स्थान नहीं दिया गया था यद्यपि एक विकसित न्याय व्यवस्था का अस्तित्व था, किन्तु कोई मानव अधिकार धोषणा पत्र

नहीं था। हिन्दूधर्म जैन धर्म तथा अशोक के विचारों में मानवाधिकार के पुट व्याप्त थे। आधुनिक समय में मौलिक अधिकारों की मान्यता स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान दी गई। यह संघर्ष मूलरूप से नागरिक एवं मानव अधिकारों को कुचलने के विरूद्ध था। स्वराज (भारतीय शासन) आन्दोलन लाखों भारतीय में आत्मचेतना जगाने तथा उन्हें नैतिक एवं वैधानिक रूप से सजग बनाने का प्रयत्न था।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय संविधान में नागरिको के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए ठोस प्रावधान बनाये गये तथा उन्हें न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व प्रदान किये गये। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को अपनी मानवीय गरिमा से जीने का अधिकार है। कुछ न्यूनतम आवश्यकताएं हैं जो प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए अनिवार्य हैं। इसके अन्तर्गत मजदूरों (स्त्री एवं पुरूष) के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बच्चों का शोषण के विरूद्ध संरक्षण आते हैं। बच्चों को स्वास्थ्य रूप से विकसित होने का अवसर एवं सुविधा प्रदान करना तथा मातृत्व सुविधा प्रदान करने के लिए न्यायपूर्ण एवं मानवोचित परिवेष बनाना चाहिए।

मानवाधिकार के क्षेत्रः– मानवाधिकार की विभिन्न समस्याएं नस्लीय भेदभाव, भाषाई अधिकार, धार्मिक अधिकार, लिंग भेद मृत्युदण्ड, पुलिस अत्याचार, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन इत्यादि के कारण उत्पन्न हुई हैं। भारत में मानव अधिकार के क्षेत्र का वर्णन अग्रप्रकार से हैः–

आतंकवाद और घुसपैठः– स्वतन्त्रता के पश्चात आतकंवाद, मानव अधिकार हनन से जुड़ा सबसे बड़ा मुद्दा है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद के रूप में किये गये अपराधों के पीछे जो भी दार्शनिक, राजनैतिक, सैद्वान्तिक, नस्लीय, जातीय, धार्मिक अथवा अन्य उद्देश्य हो, वे किसी भी परिस्थिति एवं रूप में अनुचित हैं। इन गतिविधियों का उद्देश्य हमेशा मानव अधिकार एवं मौलिक अधिकार का उल्लंघन करना है। आतंकवाद से जूझने के लिए नीति निर्माताओं सुरक्षाबलों और मानव अधिकारवादियों को मिलकर काम करना चाहिए। इससे विचार और अभियान को बल मिलने के साथ–साथ प्रजातांत्रिक राजनीति को संबल प्रदान किया जाता है। आतकंवाद की चुनोंतियों का सामना करने वाली नीतियों को नागरिकों का पूर्ण समर्थन मिलना चाहिए।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने सीमा सुरक्षाबल और सेना को मानवअधिकार हनन के प्रत्येक मामले को सूचित करने की हिदायत दे रखी है। मानवअधिकार अधिनियम 1993 की धारा 19 में उल्लेख किया गया है कि सेना के विरूद्व की गई शिकायत का समाधान किस प्रकार किया जाएगा,

कारागार में मृत्यु(अपमान):– पुलिस द्वारा कारागार में मौत, अपमान की घटनाएं मानव अधिकार हनन की दृष्टि से चिन्ता का विषय हैं। मौत, बलात्कार और अपमान की ऐसी घटनाओं की शिकायत बढ़ती ही जा रही है। सन् 1993 में मानव अधिकार आयोग ने पत्र लिखकर सभी राज्यों को सूचित किया की वे अपने सभी जिलाधीश और पुलिस अधीक्षक को हिदायत दें, जिससे वे पुलिस हिरासत में हुई मौत अथवा बलात्कार की घटना की सूचना, आयोग को 24 घंटे के अन्दर दें।

बाल विवाहः– बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम, 1929 के बावजूद विशेष रूप से राजस्थान सहित देश के विभिन्न भागों में बाल विवाह की घटनाएं व्यापक रूप से घटित हो रही हैं। बाल विवाह से बच्चों का बचपन छिन जाता है अतः यह भी मानव अधिकार हनन की श्रेणी में आता है।

बाल श्रमः– बालश्रम एक सामाजिक–आर्थिक मुद्दा है। बालश्रम को रोकने के लिए संवैधानिक प्रावधान है। राष्ट्रीय बालश्रम नीति की घोषणा 1987 में की गई। किंतु समस्या अभी भी विद्यमान है जिससे काफी संख्या में बाल श्रमिक प्रभावित है।

विकलागों के अधिकारः– विकलांग व्यक्तियों के अधिकार की रक्षा के लिए भ. ारतीय संसद द्वारा विकलांग (समान अवसर अधिकार रक्षा तथा पूर्ण भागीदारी) अधि ानियम 1995 पारित किया गया। तथापि इससे जुड़े नियमों को व्यावहारिक रूप नहीं दिया गया है। अधिनियम को पूर्णतः लागू करने के लिए केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार को पूर्ण रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों के लिए मानव अधिकारः– राष्ट्रीय मानव अधि ाकार आयोग ने पाया है कि भारत में कई मानसिक चिकित्सालय दयनीय अवस्था में हैं। इन अस्पतालों में आरोग्य एवं देखभाल की पुरानी पद्वति ही है। यह आरोग्यशाला की तुलना में अधिक कारगर प्रतीत होता है। चूंकि विक्षिप्त व्यक्तियों के परिवार वाले उन्हें देखने के लिए नहीं आते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त बाल वेश्यावृत्ति एवं बड़ी परियोजनाओं के कारण लोगों के विस्थापन की समस्या भी मानव अधिकार के क्षेत्र की श्रेणी में आते है।

संदर्भः–

1. भारत की राज व्यवस्था, पृ. स. 46.1 –श्री एल. लक्ष्मी कान्त
2. भारत की राज व्यव्स्था, पृ. स. 46.1 –श्री एल. लक्ष्मी कान्त
3. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति पृ. स. 189 –डा.सतीष चन्द्र
4. आधुनिक भारत का इतिहास पृ. स. 120 –डा. आर.एस.त्रिपाठी
5. भारत का संविधान पृ. स. 215 –डा. के. डी. चौधरी
6. भारत का राज व्यवस्था पृ. स. 46.2 –श्री एल. लक्ष्मीकान्त

डॉ. नीतू वशिष्ठ
शोध निर्देशिका
एसोसिएट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
श्री के0के0 जैन महाविद्यालय, खतौली
डॉ. सोनिका
शोधार्थिनी, ग्राम– ढाना, जिला हापुड़
गढ़मुक्तेश्वर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

भारतीय कला में अभिव्यंजनावाद के दर्शन

सर्वप्रथम यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि अभिव्यंजनावाद क्या है? और किस प्रकार यह अभिव्यंजनावाद के रूप में जाना गया? अभिव्यंजना मनुष्य की वह सहज प्रवृति है जिसमें वह अपने ह्रदय को आन्तरिक विचारों, भावनाओं, संवेगों व स्मृतियों आदि को किसी भी कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। वही अभिव्यंजनावादि कला कही जाती है।

कला का लक्ष्य मानव के समस्त भावों की अभिव्यक्ति है। –टालस्टाय[1]

"In this sense it is true to say that art is Expression nothing more and nothing less" – Herbertread[2]

''कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है'' – रविन्द्र नाथ टैगोर

अभिव्यंजना तो तभी से ही है जब से मनुष्य ने अपने मस्तिष्क को विकसित किया है। यह प्रवृति भी सभी जगह थी किन्तु जब इसको सूक्ष्म रूप से जाना गया तो सर्वप्रथम जर्मनी से जाना गया। जिसे आधुनिक कला का नाम भी दिया गया।[3]

वालडेन जर्मन कला समक्षक थे और उनका मानना था कि प्रभाववाद चित्रकला के विरूद्ध कलाओं को अभिव्यंजनावाद का नाम दिय जाये।

इस प्रकार ''अभिव्यंजनावादी कला के अन्तर्गत कलाकार, साहित्यकार, नाटककार अपनी अर्न्ततम भावनाओं को अभिव्यक्त करने पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित रखते हैं चित्र के प्रमुख अवयव होते हैं रेखा एवम् रंग किन्तु चित्रकार की दृष्टि में ये गौण होते हैं। चित्र में अभिव्यक्ति की भावना प्रधान होती है। प्रतिक सत्य को वह अनुरजित करने की चेष्टा नहीं करता। ऐसे चित्रों में कलाकार सांकेतिक ढंग से अपनी निजी अनुभूति, शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक या अपनी भावनाओं को प्रतिक. ात्मक ढंग से अभिव्यक्त करता है और उसे सशक्त और जोरदार बनाने के उद्देश्य से प्रायविकृतिकरण का सहारा भी लेता है।''[4]

भारत में प्राचीन काल से ही मानव जीवन में कला का विशेष महत्व रहा है क्योंकि अभिव्यक्ति मानव की स्वाभाविक क्रिया है जिसे मनुष्य हर युग में, हर काल में, हर देश में करता आया है। ''इतिहास के पन्नों में वैदिककाल, रामायण काल, महाभ्ज्ञारत काल, जैन काल, बौद्ध काल, राजपूत शैली, मुगल शैली, कांगड़ा शैली आदि कला के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन मिलता है। हर युग में कलाकार ने अपने भावों को विभिन्न माध्यमों से अभिव्यक्त किया है।''[5]

भारतीय कलात्मक दृष्टिकोण अधिकांशतः सत्यम् शिवम् सुन्दरम'' की त्रयी पर आधारित रहा है। कला की चर्चा भारतीय संस्कृति की चर्चा के बिना आरम्भ ही नहीं हो सकती। ''भारतीय संस्कृति ने अपने को धर्म वांग्मय, चित्रकला, मूर्तिकला के रूप में व्यक्त किया है।''[6] यह व्यक्त करना ही अभिव्यक्ति का मूल है। कला व अभिव्यक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कला अनुभूति की तीव्रता से अभिव्यक्ति ही कला के मूल में रही है। यह प्राचीन भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है परन्तु अजन्ता, अपभ्रंश, राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी इत्यादि शैलियों में अभिव्यंजनावाद के स्पष्ट दर्शन नहीं होते परन्तु उनमें चित्रित अनेक अतिमानवीय अथवा अमानवीय आकृतियाँ अनायास ही अभिव्यंजनावाद के निकट पहुँचती दिखाई देती हैं।

तत्पश्चात् आधुनिक काल में तो कलाकारों ने कल्पना का आन्तरिक समावेश भावाभिव्यक्ति को पूर्ण करने के लिये अत्यधिक किया है। आधुनिक काल में सभी प्रकार की रूढ़ियों, परम्पराओं, नियम, प्रमाण आदि से ऊपर उठकर कला की रचना हुई है। अब कलाकार ने व्यक्तिगत रूप से कला की रचना करना आरम्भ किया न कि दर्शन की स्वेच्छानुसार। भारतीय कलाकारों ने अपने स्वयं के मनोभावों भय, आनन्द, प्रेम, दुःख, घृणा, वात्सल्य आदि को अपनी कल्पनाओं के आधार पर दर्शकों की उपेक्षा करते हुये चित्र के रूप में अभिव्यक्त किया है। सभ्यता से विकसित नवीन माध्यमों, सामग्री तथा नयी–नयी तकनीकों का प्रयोग करना प्रगतिशील कलाक. ारों का स्वाभाविक गुण है। परिणामतः आज के युग की कला व्यक्तिपरक व प्रयोग वाली है। स्वान्तः सुखाय व भावाभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता ही आज के कलाकार का नारा है। इसी से आज भारतीय कला में अभिव्यंजनावाद के दर्शन हुये हैं। गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर ऐसे ही कलाकार थे। गुरूदेव के शब्दों में ''मेरे चित्रों का स्त्रोत, प्रशिक्षण, परम्परा, और चित्रण के सचिन्तित प्रयास ये नहीं है, बल्कि लय की मेरी सहज प्रवृत्ति में और रेखाओं व रंगों के सामंजस्यपूर्ण संयोग से मुझे मिलने वाले आनन्द में है।[7]

भारतीय कला पर भी आधुनिक कला की सभी प्रवृतियों का प्रभाव पड़ा है। आज भारतीय कलाकार भी सबसे अधिक प्रधानता अभिव्यंजनावादी कला को दे रहे

हैं जिसका सूत्रपात कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर ने अपने चित्र बनाकर किया।

"India made same contribution in the development of German Expressionism the influences of German have been rather decisive. Indeed, the beginning was a made by the bnolt Rabindra Nath Tagore who seems to be essentially responsible for the exhibition of Bauhaus painting in Calcutta in 1922".[8]

भारतीय कला प्राचीन और परम्परावादी लकीन पर चल रही है उसकी आलोचना करके रविन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय कला में स्वछन्द और स्वतंत्र होने के लिये एक द्वितीय आन्दोलन चलाया। यह आन्दोलन 19वीं शताब्दी के अन्त में और 20वीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हुआ। इस प्रकार भारतीय आधुनिक कला का पुनः पुनर्जागरण हुआ और आत्म अभिव्यक्तिवादी कला चारो दिशाओं में बढ़ने लगी।

''भारतीय चित्रकला के पुनरूत्थान के उस दौर में अपने चित्रों को किसी भी देवी–देवताओं और पुराण कथाओं के स्पर्श से मुक्त रखने की जिद लिये चित्रकलां में सार्थकता और आधुनिकता की खोज करने का प्रयास सबसे पहले रविन्द्रनाथ ठाकुर ने ही किया।''[9]

रविन्द्रनाथ ठाकुर पर पालॅकली और विकासों आदि की कला पर प्रभाव पड़ा उन्हीं की आधुनिक प्रणाली से प्रभावित होकर उन्होंने जो चित्र रचना की वह बिना किसी पूर्ण अभ्यास के और बिना किसी नियम, प्रमाण आदि से बन्धी थी। इस आन्दोलन का सबसे बड़ा आधार यूरोप की यथार्थ कला को नकारना था। ये आधुनिक अभिव्यंजनावादि आन्दोलन साहित्य में छा गया। यही कारण था कि अभिव्यंजनावादि स्वरूप आधुनिक कला आन्दोलन का मुख्य विषय बन गया।[10]

इसके अतिरिक्त अमृता शेरगिल, गगनेन्द्र नाथ टैगोर व यामिनी राय ने भी बंगाल शैली से हटकर कला को एक नवीन दिशा दिखाने का प्रयत्न किया। अमृता शेरगिल जो अत्यंत भावुग और संवेदनशील थीं उनकी आत्म अभिव्यक्तिवादि कला यथार्थ स्वरूप लेकर सामने आयी। गगनेन्द्र नाथ टैगोल भी स्वच्छन्दतावादि और आत्म अभिव्यक्तिवादी थे। उनकी कला सूक्ष्म कला या धनवादी कला के रूप में उभरी। तथा यामिनी राय ने भी बंगाल शैली का विरोध करके एक नवीन स्वरूप में कलाकृतियों की रचना की। किन्तु बाद में उन्होंने लोक कला की रूढ़ियों को अपना लिया।

अब कलाकार की कलाकृतियों में जड़ता और स्थिरता समाप्त हो चुकी है इस समय कुछ समूहों ने भारतीय आधुनिक कला के विकास में महत्वपूण्र योगदान दिया। जिसमें कलकत्ता ग्रुप प्रोग्रेसिव आरटिस्ट ग्रुप, बोम्बे ग्रुप से प्रभावित हुये हैं और विभिन्न कलाकृतियों के द्वारा भारतीय कला में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वर्तमान में

20वीं शताब्दी के कलाकार समूहों की महत्ता नगण्य हो गई है। तत्कालीन समय में भारत स्वतंत्र हुआ ही था। फलतः भारतीय कला की अस्मिता बचाते हुए नवीनता को ग्रहण करते हुए तथा अन्तर्राष्ट्रीय समकालीन कला के साथ चलने के लिये कलाकारों को एक सामुदायिक भावना तथा मंत्र की आवश्यकता थी। आज कलाकार निज शैली के विकास के साथ स्वयं पृथक पहचान व अस्तित्व बनाने में व्यस्त हैं''।[11]

आधुनिक व समकालीन भारतीय कलाकारों में फ्रांसिस न्यूटन सूजा, एस0एच0 रजा, मकबूल फिदा हुसैन, रामकिंकर बैज, के0सी0एस0 पन्निकर, तैराब मेहता आदि कलाकारों ने भारतीय कला को आत्माभिव्यक्ति से पूर्ण स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया हैं संक्षेप में कलाकारों का विवरण दृष्टव्य है।

एफ0एन0 सूजा– गोवा में जन्मे सूजा ने स्वयं अपनी मन की भावनाओं को अभिव्यक्त करने पर पूरा बल दिया है। उन्होंने कहा है "I express myself freely in paint in order to exist. I paint what I want, what I live, what I feel."[12]

Lady in black, last supper, birth, blue nude आदि कलाकृतियों में विकृत अभिव्यंजनावाद के स्पष्ट दर्शन हैं।

एस0एच0 रजा– सूक्ष्म अभिव्यंजनावादी भारतीय कलाकार सैयद हैदर रजा ने भारतीय हिन्दु धर्म में परिभाषित नाद अथवा ध्वनि या फिर बिन्दू जिसे सृष्टि की उत्पत्ति के रूप में देखा जाता है और अपनी कलाकृतियों में अमूर्त चित्रकला के रूप में उजागर किया है।''[13]

"The Trayectary of his works moves from landschape painting to expressionism, to be succeeded by cubest paintings, which then lead to abstractin, abstract expressionism and post painterley abstractions and yet remains till end a painter's personal quest for expression."[14]

मकबूल फिदा हुसैन– भारतीय कला जगत के पाब्ली पिकासो मकबूल फिदा हुसैन के चित्र करबला श्रृंखला–1990 जैसे अनेक चित्रों को ख्याति मिली जो अभिव्यक्ति प्रधान है। "That is why the very Hussain who gave almost importance to his spontaneous self expression, gradually began to paint subjects in accordance with popular demand."[15]

इनके अतिरिक्त रामकिंकर बैल ने भी अपने कैरियर के शुरूआत के समय में मॉडर्न जर्मन आर्ट की प्रदर्शनी में भी हिस्सा लिया जिसका व्यापक प्रभाव उनकी कला पर पड़ा। उनकी प्रसिद्ध कलाकृति Open air tea shop, Threshing आदि चित्रों में अभिव्यंजनावाद के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

तैयब मेहता की कला पर भी फ्रांसिस बेकन की अभिव्यंजनावादी शैली का व्यापक प्रभाव पड़ा उन्होंने कहा भी था कि मनुष्य आकृति के प्रति बेकन की प्रतिबद्ध ता अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।[16] उनकी कलाकृति 'Triptych series', 'Diayanal Series' आदि कलाकृतियाँ विकृत अभिव्यंजनावाद के उत्कृष्ठ उदाहरण हैं।

के0एच0 आरा, जतिन दास, अंजलि इला मेनन, जे0 स्वानाथन आदि अनेकों कलाकार हैं जो भारत में अपनी कलाओं को स्वतंत्र रूप से नये आयाम दे रहे हैं। भारत में कलाकारों की भरमार है जो कलाकार अछूते रह गये हैं वो भी आज आत्म अनुभूतियों को विभिन्न समायोजनों का रूप देकर कला की रचना कर रहे हैं। इन सब का विवरण अत्यंत कठिन है क्योंकि प्रत्येक कलाकार कभी ना कभी अपनी अन्तर भावनाओं को अवश्य अभिव्यक्त करता है। अतः भारतीय कला मुख्यतः चित्रकला में अभिव्यंजनावाद के दर्शन की बहुलता है जो भारतीय कला में अन्य देशों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कहीं कम नहीं है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 वाजपेयी राजेन्द्र, सौन्दर्य शास्त्र (पृष्ठ 128) सुम्यिट पब्लिकेशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण (1981)
2. Herbertread, the meaing of art, (Page-20) Publisher Faber and Faber (1974)
3. Elger, dietermar, Expressionism: A Revolution in Gurmany art, (Page-7) Taschen-2007)
4. डॉ0 वाजपेयी राजेन्द्र, सौन्दर्य शास्त्र (पृष्ठ 110) सुम्यिट पब्लिकेशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण (1988)
5. शुक्ला दीप्ति, लोक कला संस्कृति एवं प्रयोगधर्मिता शोध पत्रिका, कला संस्कृति में प्रयोगधर्मिता के नये आयाम, (पृष्ठ 33) (2004)
6. श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, संस्कृति की जीवन क्षमता (पृष्ठ 24) कल्याणः हिन्दी संस्कृति अंक, वर्ष 24
7. रस्तौगी श्रीमति चुन्नी, लेखा कला एवं संस्कृति का पारस्परिक सम्बन्ध (पृष्ठ 153) शोध पत्रिका कला संस्कृति में प्रयोगधर्मिता के नये आयाम, रघुनाथ गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज मेरठ।
8. Forioqui anis (an exhibition from the federal republic of Germany) German excpressionist paintings, NGMA, New Delhi.
9. अशोक भौमिक भारतीय चित्रकला परम्परा और रविन्द्रनाथ ठाकुर कला दीर्घा अप्रैल 2011, खण्ड–द्वितीय, नं0 22, (पृष्ठ 17)
10. एस0के0 भट्टाचार्य ट्रेन्ड्स इन मॉडर्न इण्डियन आर्ट (पृश्ठ 13)

11. चतुर्वेदी ममता, समकालीन भारतीय कला (पृष्ठ 86) राजस्थान ग्रन्थ अकादमी जयपुर (2012)

12. Dalmia, Yashodhara, The Makaing of Modern Art (Page-77) Oxford University Press, New Delhi (2001).

13. Khanna Balraj & Kurtha, Aziz, Art of Modern India (Page-91) Thames and Hudsan, London (1998).

14. Dalmia, Yashodhara, The Makaing of Modern Art: The Progressive (Page-149) Oxford University Press, New Delhi (2001).

15. Kalte Prabhakar, from art to art Essays and Critique by Prabhakar Kolte (Page-87) Bodhana Art foundation (2008)

16. भारद्वाज, विनोद बृहद आधुनिक कलाकोशः (आधुनिक भारतीय कला का विकास

lkue flg
शोध छात्रा
दयाल बाग शिक्षण संस्थान
आगरा

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

ijEijkxr flrkj oknu 'kSyh& måfoyk;r [kka lkgc d s lUnHkZ e s

जिस प्रकार मानवीय सभ्यता में समयानुसार परिवर्तन होते आये हैं और उसका विकास हुआ है, उसी प्रकार संगीत में भी प्रगति के साथ–साथ विकास होता रहा है तथा उसकी उन्नति होती रही है। गायन के साथ–साथ विविध संगीत वाद्यों से भी भारत का संगीत समृद्ध हुआ है। ''आवश्यकता आविष्कार की जननी है।'' मानव ने अपनी कल्पना शक्ति एवं सूझ–बूझ के द्वारा अनेक प्रकार के वाद्यों का विकास किया, जिसमें प्राचीनकाल के वाद्यों में परिवर्तन कर नवीन वाद्यों का अविष्कार किया गया जैसे–मृदंग एवं परवावज में परिवर्तन कर तबले का, वीणा में परिवर्तन कर सितार एवं सुर व हार आदि का विकास किया गया।

प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक असंख्य वाद्य अस्तित्व में आ चुके हैं, जिन्हें विद्वानों ने उनकी ध्वनि, विशेषता, बनावट के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है। भरतमुनि ने वाद्यों को उनके स्वरूप के आधार पर चार वर्गो में विभाजित किया है–

1. तत् अर्थात् तन्त्रीयुक्त वाद्य
2. अवनद्ध अर्थात् चरमाबद्ध वाद्य
3. घनअर्थात् ताल वाद्य
4. सुषिरअर्थात् वंशादि वाद्य

शोध का विषय चूंकि वर्ग के वाद्य से सम्बन्धित है, अतः यहाँ केवल वर्ग के अन्तर्गत आने वाले वीणा के परिवर्तित रूप सितार विषय पर ही चर्चा की जायेगी।

ऐतिहासिक तथ्यों से परिलक्षित होता है कि सितार का निर्माण त्रितन्त्री वीणा के आधार पर ही हुआ ।

सा़ारंगदेव के समय तक जो वीणा त्रितन्त्री के नाम से प्रचलित थी, उसी ने आगे चलकर सितार का रूप धारण कर लिया।

विगत 50–60 वर्षों में सितार वादन के क्षेत्र में कई ऐसे कलाकार हुए, जिन्होंने सितार वाद्य को जनमानस तक पहुँचाने एवं उसे लोकप्रिय बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसमें निखिल बनर्जी, उ. अब्दुल हलीम जाफर खाँ, उ०विलायत खाँ साहब, पं० शंकर आदि अनेक नाम हैं।

इन्हीं सितारवादकों में से यदि उ०विलायत खाँ साहब के विषय में चर्चा की जाये तो उनके द्वारा संगीत क्षेत्र में किये गये कार्य अकथनीय एवं अविस्मरणीय है।

उ०विलायत खाँ साहब इमदाद खानी घराना जिसे (इटावा घराना) भी कहते हैं, से ताल्लुक रखते थे। विलायत खाँ साहब के दादाजी साहब दाद खाँ साहब इटावा घराने के प्रतिनिधि कलाकार थे जो कि सारंगी वादक थे और बाद में सुरबहार वादक बने। साहबदाद के पुत्र एवं विलायत खाँ साहब के पिता इमदाद खाँ साहब एक कुशल सितार वादक थे। विलायत खाँ साहब ने सितार की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के नेतृत्व में ही प्राप्त की थी।

विलायत खाँ साहब द्वारा सितार की वादन शैली में किए गए परिवर्तन इस प्रकार हैं–

उ०इमदाद खाँ एवं इमदाद खानी शैली से वाद न करने वाले अपनी सितार की गेज एवं उसे मिलाने की पद्धति इस प्रकार अपनाते रहे हैं–

तार व्यवस्था	7	6	5	4	3	2	1
स्वर व्यवस्था	सं	स	प़	प़	स़	स़	म़
तार का नाम	चिकारी	चिकारी	पंचम	ख़रज	जोड़ी	जोड़ी	बाज
धातु	फौ०	फौ०	फौ०	पी०	पी०	पी०	फौ०
तार का नं०	00	00	2	26	29	29	2

तरब के तारों का नं० 00 का ही प्रयोग करते रहे। उ०इमदाद खाँ के पोते तथा उ०इनायत खाँ साहब के सुपुत्र सितार वादक उ०विलायत खाँ साहब ने डॉ. प्रकाश महाड़िक द्वारा दिये गये एक साक्षात्कार में तारों के सम्बन्ध में कहा है कि ''मैनें तारों की संख्या सात से घटाकर पाँच की दी, एक षड़ज (जोड़ी में से एक) और खरज़ के पंचम का तार निकाल दिया था, लेकिन थोड़े अर्से बाद मुझे एक तार की और जरूरत महसूस हुयी, इसलिए मैनें पंचम के बदले इस्ताप का नया तार जोड़ दिया।''

वर्तमान समय में उ०विलायत खाँ साहब द्वारा अपनायी गयी सितार मिलाने की पद्धति इस प्रकार है–

तारव्यवस्था	7	6	5	4	3	2	1
स्वरव्यवस्था	सं	स	प़	ग़	स़	–	म़
तारकानाम	चिकारी	चिकारी	पंचम	गंधार	जोड़ी	–	बाज
धातु	फौ०	फौ०	फौ०	फौ०	ब्रा०	–	फौ०
तारकानं०	0	0	2	3	28	–	3

बाज के तार के नम्बर के विषय में कभी–कभी प्रयोगात्मक तथा ध्वनि की गहराई को मध्य नजर रखते हुए विलायत खाँ साहब बाज़ के तार का 4 नम्बर भी प्रयोग करते थे। आपके छोटे भाई उस्ताद इमरत हुसैन खाँ बाज में 3 नम्बर, जोड़ा में 28 नम्बर का तार लगाते हैं। उस्ताद रईस खाँ, जो कि विलायत खाँ साहब के भान्जे है, वे भी अपने सितार में बाज का तार नम्बर 4 तथा जोड़ी के लिए 27 नम्बर का तार प्रयुक्त करते हैं। अतः इस घराने के सभी शिष्य उपरोक्त तार लगाने की पद्धति का पालन करते हैं। इस पद्धति में क्रमांक चार एवं पाँच खूँटी पर लगे तारों को संवाद भाव से मिलाते हैं तथा इन्हें 'छेड़ के तार' कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त उ०विलायत खाँ साहब ने सितार के ढाँचे में भी कुछ परिवर्तन किए, जो कि इस प्रकार है– खाँ साहब ने सितार की तबली को मोटा किया क्योंकि पहले दो सुरों की मींड चलती थी, अब 5–7 सुरों की मींड़ चलती है। अब सुरभी टिकाना है एवं मींड़ भी लेनी है, तो यह सब काम करने के लिए तबली को ऊँचम किया गया एवं उसकी जीपबादमे को बढ़ाया गया।

खाँ साहब ने सितार के तार–गहन को भी मोटा रखा, ताकि यह तार के खिंचवा का वनज बर्दाश्त कर सके और लम्बी मींड़ खींचने के लिए उस पर दबाव न पड़े। खाँ साहब ने सितार के ब्रिज को भी ऊँचा किया तथा जवारी को गोल और बन्द रखा ताकि सितार में आँस काफी देर तक टिकी रहे और तारों की झनझनाहट भी कम हो।

उ०विलायत खाँ साहब ने अपने सितार में इन मूलभूत परिवर्तनों के अतिरिक्त कुछ गौण परिवर्तन भी किए जैसे–आपने ऊपरी तुम्बे को हटा दिया तथा स्वर के उतार–चढ़ाव को नियन्त्रित करने हेतु मनके के स्थान पर एक पेंचदार चीज़ का प्रयोग किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उ०विलायत खाँ साहब द्वारा सितार एवं उसकी वादन शैली में नवीन प्रकार से विकास किया गया, जो आज भी अत्यधिक प्रचलित है।

LkUnHk xUFk

1. भारत के प्रतिष्ठित सितार वादक–डॉ. अशोक कुमार

अमनदीप कौर
शोध छात्रा
पैसेफिक यूनिवर्सिटी
उदयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

पेपर मैशी में प्रसिद्ध चित्रकार मंजू मिश्रा

मंजू मिश्रा

वनस्थली विद्यापीठ और परिवार के कलात्मक वातावरण में पली मंजू को बाल्यावस्था से ही अपनी कला प्रतिभा विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ है। वनस्थली के प्राकतिक, सौम्य ग्राम्य संस्कृति और वातावरण ने इनकी कला को विविध विषयों के चयन करने में सहयोग दिया है। वनस्थाली ग्राम की कच्ची दिवारों पर बने लोक अंलकरणों और मांडणों ने इन्हें सदैव प्रभावित किया हैं तथा इनकी कृतियों में ये अपना रूप परिवर्तित कर अवश्य सम्मिलित हुए हैं।

रेखांकन के अम्यास तथा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गरिमा से युक्त वास्तुशिल्पीय पृष्ठभूमि के अध्ययन के प्रति विशेष अभिरूचि से इनकी रेखाएं यथार्थ आकार पाने में कही भूल नहीं करती है। अलंकरण के प्रति रुचि तथा राजस्थान की माटी के प्रति गहरे लगाव ने इन्हे पेपर मेशी माध्यम में कार्य करने की प्रेरणा दी। इस माध्यम द्वारा इन्होंने कई रिलीफ कलाकृतियां बनाई जिने राष्ट्रीय स्तर पर सुखद और प्रेरण ाादायक सम्मान मिला। इस माध्यम में द्विआयामी और त्रिआयामी प्रभावों के प्रयोगों ने इन्हें पेपरमेशी के सिद्ध कलाकार होने की ख्याति दिलाई। आकारों की सरलता, अभिव्यक्ति की सहजता तथा काल्पनिक गहनता ने इन शिल्पाकृतियों के सृजन सौन्दर्य में अभिवर्धन किया हैं। राजस्थान की लोककला और कहीं–कहीं अफ्रीकन लोक कला तत्त्वों के रचनात्मक प्रयोगों ने उन्हें राजस्थान की कुशल शिल्पी महिला होने का गर्व प्रदान किया है।

मंजू का बचपन एवं कलाशिक्षा

मंजू का जन्म 15 जून 1950 को वनस्थली में हुआ, कला की शिक्षा बाल्यकाल से ही प्राप्त हुई। आपके पिता श्री देवकीनन्दन शर्मा जो स्वयं एक चित्रकार थे, आपके गुरु रहे और ज्येष्ठ भ्राता श्री भवानीशंकर शर्मा के कला तत्वों ने सपास अनायास इनके सृजन को प्रभावित किया है। पिता देवकीनन्दन शर्मा का जीवन जीने का तरीका बिल्कुल अलग था, उसी तरह उनका चित्र बनाना और सिखाने का

तरीका भी काफी अलग था वे पैपर देकर कहते जो बनाना है उसी को बनाओं। किसी को कहते या थोपते नहीं थे की फला करो। मंजू ने अपने पिता से काफी कुछ सिखा। मंजू कहती है कि ''पिता के व्यवहार से लगता नहीं था कि वो हमारे पिता हैं, बल्की दोस्त लगते थे वे सिखाने के लिए ऐसी बातचित रखते थे की हम अपने मन की कहते थे।''

मंजू को वनस्थली का माहौल भी ऐसा ही मिला की उन्हें पढ़ाई ही करनी पड़ती थी। मां केसर बाई थी। माता–पिता सन् 1937 से ही वनस्थली में रहे थे, जिससे मंजू को भी बहुम कुछ सीखने को मिला। यहाँ ज्यादातर कार्य प्रकृति पर किया जाता था। आपको बचपन में पोलियों को गया था, जिससे आपका ज्यादा समय पिता के साथ व्यतीत होने लगा और कला में रूचि बढ़ती चली गई। 10वीं कक्षा तक आते–आते मंजू ने पेपर मैशी को अपनी कला का माध्यम बनाया। उम्र बढ़ने के साथ–साथ आपकी पढ़ाई में भी कई बदलाव आये। इतिहास में एम.ए. पूर्ण करने के बाद आपने सन् 1973 में चित्रकला में एम.ए. किया। उसके बाद कुछ अलग करने का मन हुआ तो एक्सपेरीमैन्ट करते–करते पुनः पेपर मेशी को अपने चित्रों का माध्यम बनाया। इस माध्यम में द्विआयामी और त्रिआयामी प्रभावों के प्रयोगों ने इन्हे पेपर मेशी के सिद्ध कलाकार होने की ख्याति दिलाई।

चित्रों की विशेषताएँ

जयपुर की महिला चित्रकारों में, पेपर मैशी पर कार्य करने वाली ये पहली चित्रकार है। जिसने पेपर मेशी से चित्र व मूर्तियां दोनो बनाई है। इस माध्यम से उन्होंने पोटस, लेम्प व घरों का सजाने वाली अनेक चीजें बनाई हैं। मंजू को टे. क्सचर में भी अधिक रूचि रही है। आपने कई म्यूरलस भी बनाए हैं। रंगों को मंजू अपने हाथों से तैयार करती थी, व चित्र बनाती थी और सिल्क के कपड़े पर काफी चित्रण किया। मंजू ने ग्राफिक माध्यम में भी काफी कार्य किया। जिसमें मुख्य रूप से वुड, लिनो, कोलोग्राफी में काम किया था। इसके अलावा तैल रंग, एक्रलिक रंग, पोस्टर व जल रंग में भी कई छोटे बड़े चित्र बनाए।

पेपर मेशी के चित्रों व मूर्तियों की निर्माण विधि

पेपर मेशी से चित्र व मूर्तियाँ बनाने के लिए पहले पेपर मेशी की मिट्टी को तैयार की जाती है। इस पेपर मेशी मिट्टी को तैयार करने के लिए कागल का ज्यादा प्रयोग किया जाता है। मुलतानी मिट्टी कि मात्रा कम होती है। इसके लिए मुल्तानी मिट्टी को पानी में भिगोया जाता है तथा पेपर को छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर

अलग बर्तन में पानी में भिगोया जाता है। कागज की मात्रा मुलतानी मिट्टी से अधिक होगी। इन दोनों को अलग–अलग बर्तनों में कम से कम 4 या 5 दिनों तक पानी में भिगोया जाता है और रोजाना पानी बदला जाता है। ताकी पानी से बदबू न आए। पेपर व मुलतानी मिट्टी दोनों जब चिकने हो जाए तो दोनों में से पानी को निकाल कर अलग–अलग बोरियों पर रखा जाता है, जिससे बोरी पानी सोख लेती है। जब पेपर और मूल्तानी मिट्टी हल्के गीले रह जाए तो दोनों को मिलाया जाता है, अच्छी तरह मिलाने पर पेपर मेशी मिट्टी तैयार हो जाती है। इस बात का ध्यान रखना पड़ता है की तैयार मिट्टी पूरी तरह चिकनी होनी चाहिये।

चित्र बनाने के लिए पतली प्लाई बोर्ड की आवश्कता होती है जिसे हम कैनवास या पेपर के रूप में इस्तेमाल करेगे। बड़े चित्र बनाते समय मोटी प्लाई काम में ली जाती है। प्लाई के ऊपर पेपर मैशी लगा कर हाथों की ऊंगलियों से अलंकरण किया जाता है। जहां जो रंग लगाना हो वो लगाते जाते हैं और अन्त में वारनिश लगाते हैं ताकी चित्र सुन्दर दिखाई दें।

मूर्तियों या क्रार्फ्ट का कार्य करने के लिए पहले खजूर की हरी लकड़ी से टोकरी सोफा, पिलर लेम्प या घरों को सजाने वाली जो भी चीज बनानी हो हरी, लकड़ी के बुनते हुए उसको आकार देते हैं। उस तैयार आकार को लकड़ी का चोकड़ा कहा जाता है। फिर उसके ऊपर पेपर मेशी में थोड़ा फेवीकोल डालकर उसके ऊपर कई सारी लैयर (सतह) डालते हैं। एक परत सूखने पर दूसरी परत लगाते हैं। यहाँ जो रंग चाहे लगाते हैं। इसी तरह मूर्ति या क्रार्फ्ट जो भी बनाते हैं। उसके पूर्ण होने पर उसमें चमक लाने के लिए वारनिश लगाया जाता है।

मंजू की एकल एवं सामूहिक प्रदर्शनियाँ

बचपन में पेपर मेशी से खेलते खेलते बड़े होकर मंजू ने इसी माध्यम को अपना लिया और क्राफट में कार्य करना प्रारम्भ किया। 1972 से प्रदर्शनियों में भाग लेना शुरु किया और फिर 1973 में मूर्तियां बनाने लगी। 1974 की प्रदशनी के बाद कार्य करते करते इस माध्यम में चित्र बनाना शुरु किये और फिर उनकी प्रदर्शनियाँ लगाने लगी।

एकल प्रदर्शनियों में राजस्थान हैण्डीक्राफ्ट बोर्ड, 1974 व राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, 1981

सामूहिक प्रदर्शनयाँ आपने कई अलग स्थानो पर आयोजित की जिनमें

* ग्रप शो एट इन्फोमेशंन सेन्टर, जयपुर, 1972, ऑल इण्डिया एगजीबीशन, महाकोशल कला परिषद, रायपुर, 1974

* ऑल इण्डिया हैण्डीक्राफ्ट एगजीबीशन, जयपुर, 1975
* नेशनल एगजीबीशन ऑफ आर्ट, नई दिल्ली, 1976, 80, 85
* ग्रुप शो एट जहांगीर आर्ट गैलरी, मुम्बई, 1976, 94
* ग्रुप शो एट रवीन्द्र भवन, दिल्ली, 1976
* ऑल इण्डिया फाईन आर्ट एण्ड क्राफट सोसाएटी, नई दिल्ली, 1997
* ललित कला अकादमी, जयपुर, 1979 से 92 व 96
* ऑल इण्डिया वुमेन्स एगजीबीशन एट जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, 1998
* ऑल इण्डिया एगजीबीशन, जयपुर
* ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1990, 91
* ग्रुप फैमिली एगजीबीशन, होटल राजपूताना, जयपुर, 2005
* एगजीबीशन एट उद्योग मेला, भीलवाड़ा, 2011 से 2014 तक
* स्टेट आर्ट एगजीबीशन, भीलवाड़ा, 2012

पुरस्कार एवं संग्रह

मंजू को राजस्थान हैण्डीक्राफट बोड द्वारा सन् 1974 में पुरुस्कृत किया गया। उसके बाद सन् 1981 में राजस्थान ललित कला अकादमी ने पुरस्कृत किया। मंजू के कार्य म्यूजियम ऑफ पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ, आर्ट कॉलेज दिल्ली, जवाहर कला केन्द्र जयपुर में संग्रहित किये गये है।

प्रमुख चित्रों के नाम

गप–शप, बनी ठनी, फूल, व्यक्ति चित्रण पर्यावरण, सूखे पेड़, प्रकृति चित्रण महिलाएँ, गणेश, अन्टाइटिल्ड, कम्पोजीशन आदि। कपड़े की गाठों पर अनेक चित्र बनाए जिसे कपड़े की गाठ पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा आदि नाम दिये गए।

मूर्तियों के विषय

फूलदान, लेम्प, पिलर, पोट, टोकरियां, कोर्नर, कुर्सी, सोफा, मेज, आदि आपकी मूतियों के विषय रहें।

चित्रों का वर्णन

मछलियाँ – इस चित्र को मंजू ने पेपर मेशी से पतले प्लाई बोर्ड पर बनाया है यह चित्र रिलीफ चित्र हैं। इस चित्र में मंजू ने छः मछलियाँ बनाई, जो पीले और लाल रंग से बनी हुई है। चित्र के बिलकुल बीच में एक बड़ी मछली हैं। मछली के

पेट पर लाल रंग से एक गोला बनाया गया हैं। शेष भाग पीले रंग से बना हुआ है। सभी मछलियों की आखें लाल रंग से बनाई गई। छोटी मछली बड़ी मछली की पूंछ के पास अपनी पूंछ लगाए विपरीत अवस्था में दिखाई गई है। बड़ी मछली के आगे की ओर लाल गोले के ठीक सामने चित्र की सबसे छोटी मछली को बनाया गया तथा, इसके मुंह के पास दूसरी मछली की पूंछ है। इस मछली का मुंह बड़ी मछली के पास है। चित्र के दायें ओर सबसे नीचे एक और मछली बनी हुई है तथा चित्र के पीछे के भाग में पानी दिखाने के लिए नीले रंग का प्रयोग– अतः लहरों को सफेद व पीले रंग से बनाया गया है। चित्र को ऊंगलियों की चुटकियों से बाहर की ओर उभारकर चित्रित किया गया है। (चित्र–1)

कपड़े की गांठ (दूसरी) – यह पेन्टिंग पेपर पर एक्रलिक रंगों से बनाई गई है। इस चित्र में भी मूंज ने छः गाठों को प्रमुख रूप से बनाया है। चित्र के निचले हिस्से में काफी कपड़े बिखरे हुए चित्रित किये गए हैं। गाठों में पीला, गुलाबी, भूरा, लाल रंगों का अधीक प्रयोग किया गया है। ऊपर की तरफ चित्र में सफेद रंग दिखाया गया है। चित्र के निचले हिस्से में जहां कपडे बिखरे हुए हैं वहाँ लाल, गुलाबी, पीला और भूरे रंग का प्रयोग किया गया है। कपड़ों के ऊपर गाठों की गुब्बारे की तरह दिखाया गया हैं। गांठों में भिन्न–भिन्न रंग किये गये है। चित्र के बीच में दो बड़ी गाठे बनाई गई हैं। इन बड़ी गाठों के बीच में एक छोटी सी गाठ ऊपर की और दिखाई गई हैं। चित्र के दांये ओर बड़ी गाठों के बाद एक छोटी गाठ को बनाया गया है तथा बांयी ओर दो बड़ी गठों को बनाया है। चित्र के पीछे का भाग सफेद रंग से बनाया गया है। जिसमें कहीं–कहीं अन्य रंगों की बून्दे दर्शायी गयी हैं। (चित्र–2)

फूल – लाल फूलों वाली बेल के तीन फूल और टहनी को मंजू ने कैनवास पर तैल रंगों से चित्रित किया। चित्र के पीछे का भाग सफेद है। उनके ऊपर जो फूल बनाए गए वे लाल रंग के है। फूलों के मध्य में टहनी जिस पर एक फूल नीचे लटकता हुआ और दो अन्य फूल एक साथ जुड़े हुए ऊपर की और बनाये गए हैं जिनके मध्य में एक हरे रंग क पत्ती है। पूरे चित्र के बीच वाले फूल के ऊपर से एक और पत्ती सी टेहनी निकली हुई दिखाई गई हैं। (चित्र–3)

गपशप – इस चित्र में मंजू ने पांच स्त्रियों की बातें करते हुए दिखाया हैं। सभी के सिर पर दुपट्टे हैं। पांच में से दो स्त्रियों के सिर पर बोरले भी लगे हुए हैं। एक स्त्री को चित्र में सबसे आगे की ओर चित्रित किया गया है। वह लाल रंग का दुपट्टा, पीली चौली, गले में हार, हाथों में चूडीयाँ, ऊंगली में अंगूठी पहने है। उसकी बांयी कोहनी चित्र के हाशीयें पर रखी हुई है और हाथ हाशीये से

बाहर निकला दिखाया है। हाशीयां सुन्दर डिजाइन से बनाया गया है। स्त्री के मुख के भावों से लगता है की वे अन्य स्त्रियों की मालकिन हो। चित्र के दांये भाग में इस स्त्री के पीछे एक अन्य स्त्री बनाई गई है जिसका दुपट्टा गुलाबी, सिर पर बोरला, हाथों में चूड़ियाँ, आंखें नीचे की ओर झुकी हुई हैं। बांये ओर तीन स्त्रियाँ हैं। जिनमें से एक हल्के नीले रंग का दुपट्टा, दूसरी पीला दुपट्आ, तीसरी गुलाबी दुपट्टा पहने हुए गले में हार, बालों की जुल्फें निकाले हुए अपनी मालकिन की

(चित्र–1) मछलियाँ

(चित्र–2) कपड़े की गांठ

(चित्र–3) फूल

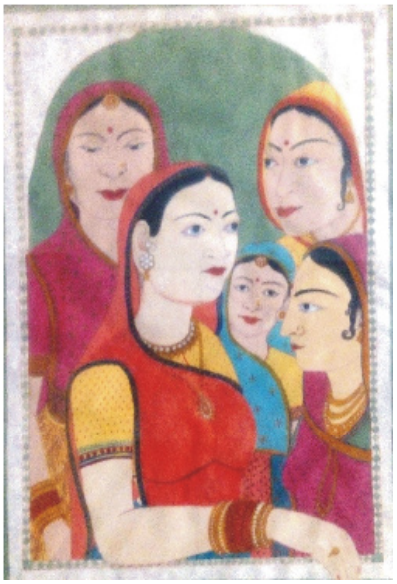

(चित्र–4) गपशप

सविता शर्मा
शोध छात्रा,
पेसेफिक यूनिवर्सिटी, उदयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

अंगालेखन कलाः सौन्दर्यमयी अलंकार

अंगालेखन कला की यह प्रथा जीवन को कलापूर्ण बनाने की सौन्दर्यमयी समृद्ध भावना से पल्लवित करती है। मानव शरीर के सजीव अंगस्वरूप यह स्मृति चिह्न के मूल में यह लोकविश्वास प्रचलित है कि अंगालेखन से बने अलंकार कभी नष्ट नहीं हो सकते।

प्राचीनकाल से ही मानव मन सौन्दर्य के प्रति आकर्षित रहा है। अतः वर्तमान परिवेश के कलात्मक साधनों के निर्माण से पूर्व भी पुरातन काल में गोदना सौन्दर्यायन का महत्वपूर्ण उपाय था। श्रृंगार सज्जा की ललक स्वरूप भॉति–भॉति के श्रृंगार प्रसाधनों व आभूषणों का निर्माण हुआ है। इन्हीं अलंकारों का एक भिन्न किन्तु स्थित व स्थित स्वरूप गोदना भी है जिसने कोमल, कमलीय देहयष्टि की स्वामिनी नारी को आभूषणों के समान सौन्दर्य प्रदान किया। इसी कारण धार्मिक अनुष्ठानों से परिपूरित ग्रामवासियों के जीवन में सौन्दर्य का यह अलंकरण आज भी सजीव परम्परा बना हुआ है। यह व्यैक्तिक न होकर सामुदायिक है, अलंकरणों में मौलिकता नहीं है, वे पीढ़ी दर पीढ़ी उन्हीं पारम्पारिक, आकारों में पुनरावृत्त होते रहते हैं, फिर भी उनके जीवन में अभिन्न रूप से समाहित है।

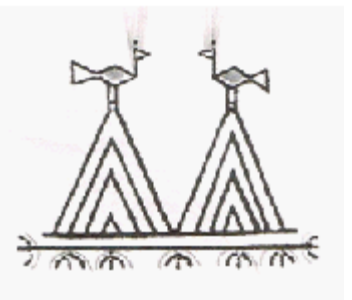

आदिवासियों में अंगालेखन 'खोनणं' के नाम से जाना जाता है इस शब्द का अर्थ है 'खोदना' या 'गोदना' से है, क्योंकि इसमें सुई की नोंक से त्वचा को छोड़कर या गोदकर उसमें सेम के पत्तों का रस, तेल और कालिख भरी जाती है,

जो मानवीय भावनाओं व आकांक्षाओं के सौन्दर्य प्रतीक स्वरूप है। यह कला अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति के कारण सृजनात्मक रही है, जिससे प्रयोगशीलता व रचनात्मकता को गति मिलती है। कुछ प्रवृत्तियॉ आदत बन जाती है। अतः अंग आलेखन के आकार पुनरार्वतन के कारण दीर्घकालीन परम्परा बन जाते हैं। उनकी स्वतंत्र कला, रचना में नवीनता का प्रस्फुटीकरण कर परिवर्तन को जन्म देती है। रहस्यात्मकता व स्वप्न, नवीन प्रयोगों को फलित करते हैं। सृजनात्मकता व्यक्तिगत प्रयास है, जिसकी क्रियात्मकता अनेक भिन्न–भिन्न रूपों का निर्माण करती है। अतः अंग–आलेखन का स्वयमेंव रहस्य प्रतीकात्मकता है।

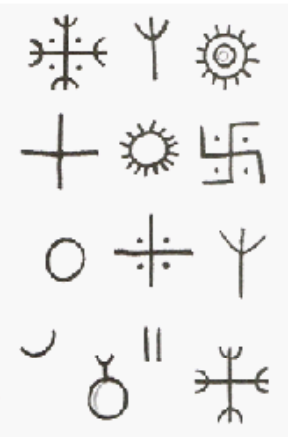

भैरव के स्थापन और विचित रहस्यमय आकृतियॉ उनके कौतुहल को प्रकट करती हैं, जो शरीर के विभिन्न अंगों पर आकारगत होकर सरल–निर्मल आनन्द प्रस्फुटित करने वाली ह्दयाभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होती है। अंगालेखन के प्रसंग साहित्य में भी प्राप्त होते हैं। सुन्दरी तिलक में आए हुए गोदने के प्रसंग से ज्ञात होता है कि गोदनहारियॉ इस कार्य को सम्पन्न करती है। अंगालेखन अनेक रंग के बनते हैं, इन्हें भुजाओं, कपोलों आदि पर विभिन्न रूप एवं आकारों में चित्रित किया जाता है तथा नाम भी लिखाए जाते हैं।

अंगालेखन के ऐसे अनेक उदाहरण 'डॉ. लल्लनराय' ने अपने लेख 'भारत में गोदना' के अंतर्गत रीतिकाव्य चुन–चुनकर एकत्रित किए है, जिनमें 'गोदनार' अथवा 'लिलिहारी' द्वारा नायिका के अंगों पर गोदना गोदने की चर्चा है।[1]

समाजशास्त्री 'डॉ. प्रेमचन्द शर्मा' के अनुसार 'प्राचीनकाल में अंग आरेखन से सम्बन्धित भिन्न–भिन्न मान्यताएॅ पाई जाती थी, जो पुरूष व स्त्री वर्ग में भी समान नहीं थी। आभूषण तथा अन्य प्रत्येक अलंकरण मृत्यु पर्यन्त त्याग दिये जाते हैं, परन्तु गुदना ही एकमात्र ऐसा अलंकरण है, जो कि लोक से देवलोक तक साथ रहता है।

सुख–दुख हेतु आत्माओं को उत्तरदायी मानने वाली ग्रामीण व आदिवासी जातियॉ आत्मा के प्रति असीम श्रद्धा रखते है। देवी–देवताओं को अंगालेखन के रूप में चित्रांकित कर वे स्वयं को सुरक्षित समझते हैं। पशु–पक्षी अथवा जन्तुओं से भयभीत रहने पर उसी आकार को गुदवाकर यह माना जाता है कि उनका बल मानव में आ गया है। लाभदायक, शुभदायक या सहायक चिह्नों को भी गुदवाया जाता है।[2]

ईश्वर के प्रति समर्पण भावना प्रदर्शित करने हेतु देवी–देवताओं की आकृतियॉ आलेखित की जाती है, इसे देवताओं को प्रसन्न करने का माध्यम समझा गया। सूर्य, चन्द्र तथा अन्य लोक देवताओं के रूपायन महिलाओं हेतु इसलिए भी अनिवार्य किए गए कि इन आराध्य स्वरूप प्रतीकों को स्त्री शरीर पर अंगालेखन से, परपुरूष द्वारा स्त्री यौनाचार से सदैव विमुख रहेगी। कुछ समाजों में यह मान्यता है कि अंग आलेखन से रहित शरीर को मरने के बाद स्वर्ग में प्रदेश नहीं मिलेगा। कुछ समाजों में इसे दुर्भाग्यों से बचाव का साधन माना गया है। अन्य पिछड़ी जातियों में माना जाता है कि मृत्यु पश्चात् शरीर के नष्ट होने के बावजूद भी अंग आलेखन चिह्न ही आत्मा के साथ स्वर्ग तक जाते हैं। अनेक जातियों में अंग रेखांकन बिना कन्या का विवाह नहीं किया जा सकता अथवा रसोईघर में प्रवेश तक वर्जित माना जाता है। कुछ जातियॉ मानती हैं कि विपत्ति काल में यह शत्रुओं से प्राणी की रक्षा करता है।[3]

राजस्थान की सभी जातियों में अंगालेखन का प्रचलन है किन्तु मारवाड़ की बणजारा, भाट,नट, रैबारी, बावरी, भील, काबेलिया, गूजर, भील, मीणा, बागरिया आदि जातियों में यह नारी का प्रमुख अलंकार है। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश का पश्चिमी अंचल, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा राजस्थान के ग्रामीण मेलों व उत्सवों में गोदना गुदे गुदाज सौन्दर्य की झलक प्रचुरता से देखने को मिलती है।[4] विशेष रूप से अहीर, गुवारी, गूजर, चाण्डाल, सांसी, भांभी, कसाई, खटीक आदि पिछड़ी जातियों में अंगालेखन अति आवश्यक है। ग्रासिया व मादलिया जातियों में प्रत्येक प्रदर्शनीय अंग पर गोदने की परम्परा हैं।[5] पश्चिमी देशों के कुछ व्यक्ति पशु–पक्षियों के चित्रों से इस कदर शरीर गुदवाते हैं कि सम्पूर्ण शरीर काला दिखाई देता है। न्यूजीलैण्ड के 'मावड़ी' अपने शरीर पर गुदने गुदवाने की ओर बहुत आकृष्ट थे। वे सभी अंगों पर (ग्रीवा सहित) वृत्ताकार अंगालेखन का सबसे अधिक प्रयोग करते थे। 'कप्तान कुक' के अनुसार आदिम जातियों के एक व्यक्ति के शरीर को गुदनों से ढकने में कई महीने लग जाते थे।[6]

वर्तमान में अंगालेखन अथवा गोदना का कार्य बैटरी से चलने वाली छोटी मशीननुमा कलम से किया जाता था किन्तु प्राचीनकाल में जब कोई सुविधा नहीं

थी तब शरीर को सुई अथवा बबूल के मजबूत कॉटे द्वारा एक विशेष लेप से गोदा जाता है। एक विशेष काली स्याही का प्रयोग किया जाता था, जिसका तरीका बहुत भिन्न था। आक की पत्तियों का रस या गोंद तिल के तेल के साथ मिलाकर उसे कोयले, राख जली लकड़ी या कालिख के साथ चमड़ी में भरते हैं। किसी जमाने में अंग आलेखन का यह कार्य केवल महिलाएँ करती थी। प्राचीनकाल में गुप्तचर अपने कार्य में गुप्त सन्देश भिजवाने में अंगालेखन के विभिन्न आकारों से सहायता लेते थे। गोदने वाला अंग सूजता है और कुछ समय तक उसमें दर्द रहता है, फिर भी स्त्री पुरूष अंग प्रत्यंग को श्रृंगारित करने के लिए इस दारूण प्रिय अलंकार को अपनाते है। इनके अतिरिक्त अलाय–बलाय तथा ऊपरी हवा एवम् टोने–टोटकों से परिवार की रक्षा हेतु कई व्यक्ति गुदवाते थे। बिहार की संथाल जाति से गुदवाना बाल्यावस्था से ही अनिवार्य तथा व्याधि निवारक माना जाता है।[7]

गुदवाना वर्तमान में इतिहास का एक अभिन्न अंग बन चुका है। इसी उल्लेख में प्राचीन कलात्मक साक्ष्यों व मूर्तिकला के उदाहरणों में भी गुदना कला पर प्रकाश डाला जा सकता है। मध्यकालीन प्रतिमाओं पर शरीर के विभिन्न अंगों पर भिन्न–भिन्न आकृतियां उकेरे जाने के उल्लेख प्राप्त है। महाप्रमाण विरल नौ फीट ऊँची शिव मूर्ति मध्यप्रदेश के विलासपुर जिले में स्थित ताला गॉव के खझित मन्दिर में प्रतिष्ठित है। नागों के अतिरिक्त इस मूर्ति के शरीर के विभिन्न भागों पर जीव–जन्तुओं (छिपकली–नासिका), (केकड़ा–चिबुक), (पक्षी, मयूर–कर्णाभूषण), (जलचर–मकर–कन्धों के समीप) उत्कीर्णन हुआ है। वक्ष, उदर, जानु एवं घुटनों पर कुल नौ मुखाकृतियॉ बनती हैं, जिनमें सबसे नीचे घुटनों पर दो सिंह या कपिमुख और उसके ऊपर जानु पर दो हॅसती हुई बालरूप वाली, मुखाकृतियॉ उकेरी है। इसके अतिरिक्त खजुराहों एवं देवगढ़ की दसवीं से बारहवीं शती ई. के मध्य की मूर्तियों में सर्वथा अवर्णित विशेषताएँ दर्शनीय है। ये मूर्तिया पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भ गृह की भित्ति पर व स्थानीय जैन संग्रहालय में है। इसमें वक्ष स्थल व उदरभाग पर वृश्चिक व छिपकली की आकृतियॉ उकेरी गई है।[8] विष्णु की एकल मूर्तियों को वृहत्तसंहिता, विष्णुधर्मोत्तरपुराण एवं विभिन्न परवर्ती शिल्पशास्त्रों में 'श्री वत्सङ्कित वक्षाः से निरूपित किया है। यहॉ पर अंकित शब्द इस बात को स्पष्ट करता है कि श्रीवत्स वक्षःस्थल पर चित्रित है। बाद की शताब्दियों में इस चिह्न का अंकन मूर्तिलक्षण का अनिवार्य तत्व बन गया है।[9] ग्रामीण अंचलो ने इस सजीव परम्परा की डोर को मजबूती से थाम रखा है। गोदन कार्य नट जाति के व्यक्ति करते हैं यही उनकी आजीविका का प्रधान साधन है। इस अनवरत परम्परा की धार्मिक दृष्टि से पुष्टि इस प्रकार हो जाती है कि श्री कृष्ण ने अपनी प्रियतमा राधा, को स्वयं स्मृति चिह्न गोदा था।[10]

आधुनिक प्रचलन जहॉ एक ओर महिलाओं को अंग–प्रत्यंग पर लगे महीन से

महीन काले तिल व धब्बों को हटवाने हेतु प्रेरित करता है वहीं देहाती महिलाएं काली स्याही से गुदने से पति के नाम तक गुदवा कर भावनात्मक सादगी व पति के साथ मधुर सम्बन्धों को प्रकट करती है। आधुनिक वैज्ञानिक लेजर प्रणाली व रसायनों द्वारा इसे शल्यक्रिया द्वारा हटवाया जा सकता है। स्पष्ट है कि शहरों में गुदना उद्देश्य समाप्त होकर अलंकरण मात्र रह गया है फिर भी जीवन्त है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. राय, लल्लप : भारत में गोदना, त्रिपथगा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनउ, जनवरी 1965, पृष्ठ 48
2. पाटिल, डी. अशोकः भील जनजीवन और संस्कृति, भोपाल, 1998 पृष्ठ 101–102
3. माथुर, वीरेशदत्तः शरीर सजाने का शौक–गोदना, दैनिक भास्कर, जयपुर, 28 अप्रेल, 1999, पृष्ठ 4
4. नीरज, जयसिंह एवं शर्मा, बी.एल.ः राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराएं, जयपुर, 1969, पृष्ठ 106
5. पाटनी, सोहनलालः आबू क्षेत्र के आदिवासी, सिरोही, 1978, पृष्ठ 6
6. आत्रेय, अशोकः आदिम लोककला ने यूरोपीय चरित्र को दोगला बनाया, दैनिक भास्कर, जयपुर, 15 नवम्बर 1998, पृष्ठ 3
7. शर्मा, बी.एल.ः राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराऍं, जयपुर, 1989, पृष्ठ 106
8. तिवारी मारूतिनंदनः मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण, वाराणसी, 1997, पृष्ठ 311,

डॉ. अल्का पारीक (शोध निर्देशिका)
रजनी यादव (शोधार्थी)
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

सफल शिक्षण हेतु विधियाँ – आगमन एवं निगमन विधि

प्रस्तावना

जब शिक्षण कार्य किसी निश्चित एवं व्याप्क स्वरूप के अनुसार आयोजित किया जाता है तो इस निश्चित स्वरूप को विधि की संज्ञा दी जाती हैं। वास्तव में विधि शिक्षण कार्य को वांछित दिशा तथा आवश्यक गति प्रदान करती है। शिक्षण विधि या पद्धति शिक्षण का वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षक अपना पाठ अधिक रोचक तथा प्रभावी बनाता है।

किस विषय में, किस प्रकरण पर कौनसी विधि का प्रयोग किया जाए इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। वास्तव में शिक्षण हेतु किसी विधि का प्रयोग शिक्षक की योग्यता, प्रकरण की आवश्यकता पर निर्भर करता है। यदि शिक्षक स्वंय किसी विधि में निपुण नहीं है तो विषयवस्तु के लिए अधिकतम उपयुक्त शिक्षण विधि भी अनुपयोगी हो सकती है। अतः शिक्षण विधि का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर नये–नये शोध तथा चिन्तन अनेक वर्षों से चल रहे है। जिसके परिणामस्वरूप शास्त्रीय विधियों के अतिरिक्त अनेकों नवीन विधियों का भी प्रादुर्भाव हुआ है जो आधुनिक शिक्षण आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम है। विधि का चुनाव करते समय यह तथ्य सदा शिक्षक को ध्यान में रहना चाहिए कि इसके द्वारा शिक्षक के मूल्यांकन उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो सकेगी। किसी भी शिक्षक के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि किस प्रकार विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करें और अपने शिक्षण को इतना प्रभावशाली बनाए कि कक्षा छोड़ने के बाद भी उसका प्रभाव छात्रों में बना रहे। कक्षा–कक्ष में ऐसी परिस्थितियों के निर्माण के लिए शिक्षण विधियों को और अधिक परिष्कृत तथा प्रभावशाली बनाने के प्रयास किए जा रहे है।

शिक्षण विधि अर्थ व परिभाषाएँ

शिक्षण विधि के अंर्तगत एक ओर तो अनेक प्रणालियाँ एवं योजनाएँ सम्मिलित

की जाती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षण की बहुत सारी प्रक्रियाएँ भी इसमें शामिल है। जिस ढंग से शिक्षक शिक्षार्थी को ज्ञान प्रदान करता है उसे शिक्षण विधि कहते हैं। कभी–कभी युक्तियों को भी विधि मान लिया जाता है। परन्तु ऐसा करना भूल है। युक्तियाँ किसी विधि का अंग हो सकती है, संपूर्ण विधि नहीं। एक ही युक्ति अनेक विधियों में प्रयुक्त हो सकती है।

वैस्ले के अनुसार – ''शिक्षण पद्धति शिक्षक द्वारा संचालित वह क्रिया है जिससे विद्यार्थियों को ज्ञान की प्राप्ति होती है।''

बाइनिंग एण्ड बाइनिंग के अनुसार – ''शिक्षण पद्धति शिक्षा प्रक्रिया का गतिशील कार्य है।''

जॉन, डी.वी. के अनुसार – ''पद्धति वह तरीका है जिसके द्वारा हम पठन–सामग्री को व्यवस्थित करके निष्कर्षों को प्राप्त करते है।''

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पद्धति से तात्पर्य शिक्षक द्वारा निर्देशित वे प्रक्रियाएँ है जो बालकों के अधिगम में परिणित होती है। यह निर्णय विकास मार्ग की प्रबंधकीय सामग्री है।

अच्छी शिक्षण विधि की विशेषताएँ

1. विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक हो।
2. सीखने के नियमों पर आधारित हो।
3. व्यक्तिगत भिन्नता के अनुरूप हो।
4. विषयवस्तु के उद्देश्य प्राप्ति में सहायक हो।
5. अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायक हो।
6. शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों की भागीदारी हो।
7. समय, श्रम व धन का उचित प्रयोग कर सके ऐसी विधि हो।
8. शिक्षण प्रक्रिया को रोचक बनाएं तथा जिसका केन्द्र शिक्षार्थी हो ना कि शिक्षक।

इस प्रकार शिक्षण विधि एक प्रक्रिया और मूलभूत तथ्यों का वैयक्तिक समन्वय है। शिक्षण विधि में संप्रेषण कौशल, मानव सम्बन्ध कौशल, नेतृत्व कौशल और सामग्री स्त्रोतों और मानवीय संसाधनों की कला निहित होती है।

शिक्षण विधियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न स्वरूप है जिन्हें विषयवस्तु की आवश्यकता तथा कक्षागत परिस्थितियों के अनुरूप प्रयोग किया जाता है। प्रमुख आगमन विधि एवं निगमन विधि शिक्षण की प्रमुख विधियों में से है। दोनों ही विधियाँ

छात्रों को नवीन ज्ञान प्रदान करने हेतु उपयोग में लाई जाती है। दोनों विधियों की अपनी अलग–अलग उपयोगिता है।

आगमन विधि – 'आगमन' हमारे मस्तिष्क की एक विशेष क्रिया है जो विशिष्ट वस्तुओं के निरीक्षण द्वारा हमको सामान्य सत्य अथवा सिद्धान्त की ओर ले जाती है। इस प्रक्रिया में संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, तर्क निर्णय तथा सामान्यीकरण सभी की आवश्यकता पड़ती है। विशिष्ट वस्तुओं का निरीक्षण संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही सम्भव होता है। फिर इस निरीक्षण पर तर्क करके एक निर्णय पर आया जाता है। यदि वह उपयुक्त होता है तो सामान्यीकरण का रूप धारण कर लेता है।

आगमन विधि में हम अपने विद्यार्थियों को विशिष्ट उदाहरणों से सामान्य निष्कर्षों की ओर ले जाते है। आगमन विधि 'विशिष्ट से सामान्य की ओर', मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर' ले जाने वाली होती है। यह विधि विश्लेषण से संश्लेषण की और ले जाने वाली होती है।

लेंडन के शब्दों में – ''जब कभी हम बालकों के समक्ष बहुत से तथ्य, उदाहरण या वस्तुएँ प्रस्तुत करते है और फिर उनसे अपने स्वंय के निष्कर्ष निकलवाने का प्रयास करते है, तब हम शिक्षण की आगमन–विधि का प्रयोग करते है।'

आगमन विधि द्वारा शिक्षण करते समय नियमों, सिद्धांतों, परिभाषाओं आदि को पहले नहीं बताया जाता। छात्र अनेक तथ्यों, उदाहरणों, वस्तुओं आदि का निरीक्षण, तुलना या वर्गीकरण करके इन नियमों, सिद्धांतों आदि पर स्वंय पहुँचते है। इस विधि का विज्ञान, गणित, भूगोल तथा भाषा शिक्षण के अर्न्तगत व्याकरण के शिक्षण में बहुधा प्रयोग किया जाता है।

आगमन विधि के पद – आगमन विधि द्वारा शिक्षण कराते समय निम्न चार पदों का अनुसरण करना आवश्यक होता है –

(1) उदाहरण – छात्रों के समक्ष एक ही प्रकार के विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत करना।

(2) निरीक्षण – छात्रों द्वारा तुलना और समानता का प्रयोग करके उदाहरणों का निरीक्षण करे और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया जाना।

(3) नियमीकरण – छात्रों द्वारा उदाहरणों के आधार पर किसी नियम का निर्धारण किया जाना।

(4) परीक्षण – छात्रों द्वारा अन्य उदाहरणों की सहायता से नियम का परीक्षण किया जाना।

आगमन विधि के गुण – यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है क्योंकि इसमें शिक्षण सूत्रों का अनुसरण किया जाता है। आगमन पद्धति में रोचकता तथा सरसता होने के कारण छात्रों को नीरसता और थकान की अनुभूति नहीं होती। इसमें छात्र उदाहरणों के माध्यम से स्वप्रयत्न से सीखते है। ऐसा ज्ञान स्थायी होता है। यह विधि छात्रों में चिन्तन तथा सोचने की प्रवृत्ति का विकास करती है। उदाहरणों से सामान्यीकरण स्वंय करने के कारण छात्रों में आत्मविश्वास का विकास हो पाता है।

दोष – यह विधि उच्च कक्षाओं एवं सभी विषयों के शिक्षण के लिए उपयुक्त नहीं है। यह विधि धीमी है। क्योंकि प्रारम्भ से अन्त तक सब बातों की खोज बालक को ही करनी होती है। कुशल अध्यापक ही इस विधि का प्रयोग सही रूप से कर सकते हैं। उदाहरणों का चयन यदि बालकों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप नहीं किया जाता है तो वे निष्कर्ष तक पहुँचने में प्रायः सफल नहीं हो पाते है।

इस विधि के उपयोग करने में यह ध्यान अवश्य रखा जाना चाएि कि अनेक उदाहरण चुने जाएँ। एक दो उदाहरणों के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयास करना इस विधि के अनुसार उचित नहीं है। साथ ही जिन शिक्षकों में धैर्य का अभाव हो तो वे भी इस विधि का समुचित उपयोग करने में असमर्थ रहते है। आगमन विधि का प्रयोग करके शिक्षक अपने शिक्षण को अधिक रूचिकर व प्रभावशाली बना सकता है।

निगमन विधि – निगमन विधि आगमन विधि से ठीक विपरीत है। निगमन विधि में विद्यार्थी सामान्य से विशिष्ट तथा सूक्ष्म से स्थल की ओर अग्रसर होते है। निगमन विधि के सन्दर्भ में लेंडर का विचार है कि इस विधि द्वारा शिक्षण में पहले परिभाषा या नियम सिखाया जाता है, फिर उसके अर्थों की सावधानी से व्याख्या की जाती है, और अन्त में तथ्यों का प्रयोग करके उसे पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाता है।

इस विधि द्वारा अध्यापन में शिक्षक बालकों को पहले सामान्य नियम का ज्ञान करा देता है फिर विभिन्न उदाहरणों को प्रस्तुत कर उस नियम की सत्यता सिद्ध करता है। शिक्षण के इसी तरीके को अर्थात् सामान्य नियम को विशेष उदाहरणों में प्रयोग कर उसकी सत्यता की पुष्टि करने को निगमन विधि कहते है।

निगमन विधि के पद – निगमन विधि द्वारा शिक्षण करते समय निम्न पदों का प्रयोग किया जाता हैं –

(1) नियम या परिभाषा – छात्रों के समक्ष कोई नियम या परिभाषा प्रस्तुत करना।

(2) प्रयोग या उदाहरण – नियम या परिभाषा को सत्य सिद्ध करने के लिए प्रयोग करना या उदाहरण देना।

(3) निष्कर्ष – प्रयोग या उदाहरण के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचना।

(4) परीक्षण – छात्रों द्वारा प्रयोग या उदाहरण की सहायता से निष्कर्ष का परीक्षण किया जाना।

निगमन विधि के गुण –

(1) यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए व्यवहारिक तथा उपयोगी है।

(2) यह विधि ज्ञान को तीव्र गति से प्रदान करती है, क्योंकि छात्र सामान्य नियम जानने के पश्चात् थोड़े से उदाहरणों से उसकी सत्यता को जान जाता है।

(3) इस विधि में अध्यापकीय तैयारी की अधिक आवश्यकता नहीं होती है।

(4) इस विधि के प्रयोग से शिक्षण में समय की बचत होती है।

(5) इस विधि से शिक्षण में सामान्य नियम एवं सिद्धांत से सत्यता की जाँच करना लाभप्रद रहता है।

निगमन विधि के दोष

(1) यह विधि बालक की तर्क व विचार शक्ति का विकास नहीं करती है।

(2) यह विधि रटने को बढ़ावा देती है।

(3) यह विधि छात्रों की शिक्षण में सक्रियता व रूचि को कम कर देती है।

(4) स्वप्रयास के बिना प्राप्त ज्ञान अस्थायी होता है।

(5) यह विधि किसी नियम या सिद्धांत की खोज करने में सहायता नहीं करती है।

निगमन विधि में बालक की स्वाभाविक क्रियाशीलता के प्रति तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता है। छोटे बालकों में क्रियाशीलता की मात्रा बहुत अधिक होती है इसलिए इस विधि को उनके लिए अनुपयुक्त समझा जाता है। यद्यपि इस विधि द्व ारा अर्जित ज्ञान स्थायी नहीं होता फिर भी यह विधि शिक्षण कार्य को गतिपूर्वक आयोजित करने की दृष्टि से उपयुक्त है। औसत से निम्न स्तर के शिक्षार्थियों के लिए यह विधि अधिक उपयुक्त है। अन्वेषणकर्त्ता के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है क्योंकि सत्य निगमन पर आधारित नहीं है न ही उसकी खोज निगमन विधि द्व ारा की जाती है। निगमन विधि के प्रयोग करने से यह पता नहीं लग पाता कि बालक सिद्धांत को सिद्ध करने में समझ कर चल रहा है अथवा रटकर सिद्धांत को सिद्ध कर रहा है।

उपसंहार –

उपरोक्त दोनों विधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों विधियाँ परस्पर विरोधी है पर वास्तव में ये एक–दूसरे पर आधारित और एक–दूसरे की पूरक है। आगमन विधि की सहायता से जिस नियम की खोज की जाती है। उसकी सत्यता की परीक्षा निगमन विधि से की जाती है। बालक को शिक्षा प्रदान करने में आगमन विधि से कार्य आरम्भ करना चाहिए और जब बालक आगमन विधि के द्वारा सिद्धांत निरूपण करना सीख ले तो उसे निगमन विधि का प्रयोग करना सीखना चाहिये।

वर्तमान में विद्यार्थियों को उदाहरणों के माध्यम से शिक्षण अधिक कराया जाता है ताकि उनके तर्क व चिन्तन क्षमता का विकास हो सके। वे स्वंय नये सम्बंधित उदाहरण खोज सके इससे छात्रों की मनोवैज्ञानिक क्षमता का विकास होता है।

एक कुशल शिक्षक आगमन या निगमन विधि में से किसी एक विधि का चयन करके ही शिक्षण नहीं करवाता अपितु दोनों विधियों को सम्मिलित प्रयोग करके इनके गुणों का पूरा–पूरा उपयोग कर लेते है। वास्तव में ये दोनों विधियाँ मिलकर वैज्ञानिक ढंग से विचार करने का तरीका विकसित करती हो। अतः आगमन के पश्चात् निगमन विधि का प्रयोग करना समीचीन रहता है। शिक्षक को चाहिए की वह शिक्षार्थियों को सिद्धांत निरूपण तक ही न रोके रखे। अपितु सिद्धांत के उपयोग करने का भी पर्याप्त अवसर प्रदान करे। इन दोनों विधियों को अलग–अलग न मानकर 'आगमन–निगमन विधि' के संयुक्त नाम से पुकारा जाना चाहिए। हरबर्ट की पंचपद प्रणाली में इस विधि का सुन्दर समन्वय मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. माथुर एस.एस. शिक्षण तकनीक एवं नवीन पद्धतियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1991
2. पुरोहित, जगदीशनारायण, शिक्षण के लिए आयोजन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

डॉ. सरला चौधरी
व्याख्याता, हिन्दी
रिसर्च अवॉर्डी, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

सूरकाव्य में लोक साहित्य, कला, संस्कृति और धर्म

सूरसाहित्य में लोक साहित्य, संस्कृति, धर्म और कला –

'लोक' शब्द संस्कृत की 'लोक' (दर्शन) धातु में प्रत्यय के योग से बना है। लट्लकार अन्यपुरूष एकवचन में इससे 'लोकते' शब्द बनता है। 'लोकते' का अर्थ है 'देखने वाला'। ऋग्वेद के पुरूष सुक्त में यही शब्द जीवन और स्थान के अर्थ में व्यवहार में लाया जाता है।[1] वामन शिवराम आप्टे ने लोक के संसार, पृथ्वी, प्रजा, मनुष्य जाति, समूह, क्षेत्र, वास्तविक दृष्टि, दृष्टि, प्रकाश आदि अर्थ किये हैं।[2] अमरकोश में लोक के जगती, भुवन, जगत, विष्टप आदि पर्याय शब्द मिलते हैं।[3] डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने लोक के लिए स्थान विशेष का प्रयोग किया है जिसका बोध प्राणी को हो। उपनिषदों में इहलोक और परलोक तथा निरूवत्त में पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक आदि के साथ–साथ अन्य अर्थों में संसार, जगत, प्रदेश, लोक, जन, समाज आदि अर्थ किये हैं।[4] उपर्युक्त लोक शब्द के अर्थ विश्लेषण के पश्चात् कहा जा सकता है कि लोक शब्द सम्पूर्ण जन समुदाय की प्रतीति को ध्वनित करता है। पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी' में, पतंजली के 'महाभाष्य' में तथा नाट्यमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में लोक शब्द का प्रयोग सामान्यजन के सन्दर्भ में हुआ है। गीता में भी साधारण जनता के आचार विचार और आदर्श से 'लोक' शब्द का तात्पर्य है। संस्कृत में ही नहीं हिन्दी में भी लोक शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। लोक शब्द का अर्थ कहीं मृत्यु, कहीं पृथ्वी तो कहीं सारे संसार के संदर्भ में हुआ है। तो कहीं–कहीं स्पष्ट रूप से जनसाधारण के रूप में इसका प्रयोग हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भी लोक शब्द जनसाधारण के लिए प्रयुक्त हुआ है।

"लोकहु वेद सुसाहिब रीति। विनय सुनत पहिचानत प्रीति।"[5]

आ. रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक चिन्तामणी भाग–1 में भी लोक शब्द जनसामान्य के रूप में प्रयुक्त किया है। आ. शुक्ल ने लोक सामान्य, लोक सत्ता, लोक व्यवहार, लोक मंगल, लोक धर्म आदि शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर किया है।[6] इस प्रकार भारतीय साहित्य में लोक के विभिन्न अर्थ मिलते हैं। "कहीं लोक

इहलोक, परलोक, सप्तलोक आदि शब्दों की व्याख्या करते हुए स्थानवाची अर्थ प्रस्तुत करता है, कहीं वेद परिपाटी और लोक परिपाटी रूप में, नाट्यधर्मी और लोकधर्मी रूप में प्रयुक्त होकर शास्त्रेतर जनता में प्रचलित तथा उससे संपर्कित अर्थ देता है, तो कहीं लोक शब्द का अर्थ जन–सामान्य ही सिद्ध होता है।"[7]

वर्तमान में लोक शब्द केवल अभिजात्य संस्कार, पांडित्य की चेतना, शिक्षा से रहित लोक समाज तक ही सीमित नहीं है वरन् अभिजात्य वर्ग में भी लोक स्थिति पूर्ण मान्य है। सम्पूर्ण विश्व में मानवमात्र में लोक उसके सभी क्रियाकलापों, परम्पराओ, रीतिरिवाजों, संस्कारों तथा विचारों के रूप में विद्यमान रहता है। "लोक मात्र व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु सम्पूर्ण जाति, समष्टि चेतना, संवेदना अनुभूति और परिणतियों का द्योतक है। बौद्धिकता और प्रतिबंधों से रहित यह निश्छल लोक आदिम मानव से लेकर आधुनिकतम मानव में समाया हुआ है।"[8] डॉ. सत्येन्द्र ने कहा है "लोक लोक–मानव का प्रतिनिधि है। लोक मानस वह मानसिक स्थिति है जो आदिम मानस की परम्परा का अवशेष है, आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में जो सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है।"[9] अतः कहा जा सकता है कि लोक समाज वह है जिसमें समग्र मूल्यांकन पर फैले हुए समस्त प्रकार के समस्त मानव सम्मिलित हों। लोक तत्व ग्रामीण या नागरी संस्कृति की सीमा से परे प्रत्येक मानव हृदय में छिपे वे संस्कार हैं जो अशिक्षित मनुष्यों में सहज एवं स्पष्ट रूप और तथाकथित अभिजात्य वर्ग के मनों में गहराईयों से सोये रहते हैं तथा इनकी उपस्थिति से साहित्य सहज सेवैद्य बन जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने लोक तत्व के संदर्भ में लोक का विशेष अर्थ प्रस्तुत किया है। हिन्दी भाषा का 'लोक' शब्द अंग्रेजी के श्थ्वसाश का हिन्दी रूपान्तरण है। डॉ. पार्कर ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है– "'फोक' शब्द से सभ्यता से दूर रहने वाली पूरी जाति का बोध होता है, परन्तु यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाए तो सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं।"[10] लोक के सम्बन्ध में भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि लोक से हमारा तात्पर्य उस समाज से है जिसे नागरिक संस्कृति ने प्रभावित नहीं किया है, जिसमें कृत्रिमता नहीं है और जो आदिम संस्कृति के परम्परागत तत्वों को वहन किए हुए है। यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित और सम्मुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में विश्वास, रीति–रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के जड़ तथा चेतन के सम्बन्ध में मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत सम्बन्ध में, भूत–प्रेतों की दुनियाँ, जादू–टोना, सम्मोहन, भाग्य, शकुन, ताबीज, वशीकरण, रोग तथा मृत्यु

के सम्बन्ध में विश्वास तथा विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति–रिवाज, अनुष्ठान, त्यौहार, व्यवसाय, लोक कहानियाँ, धर्मगाथाऐं, किवदंतियाँ, पहेलियां भी इसके विषय हैं। मानव जाति से सम्बन्धित सभी अच्छी–बुरी घटनाएँ लोक–तत्व के अन्तर्गत आती हैं।

1. लोक साहित्य –

लोक जीवन की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोक साहित्य से ही सम्भव है। यह ज्यादातर अलिखित रहता है। यह सामान्यजन की जीवन शैली का वास्तविक रूप दिखाता है इसलिए इसे साहित्य का दर्पण भी कह सकते हैं। "जनसाहित्य को उन समस्त परम्परित, मौखिक अथवा लिखित रचनाओं का समष्टि का जा सकता है जो एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्मित होते हुए भी आज सामान्यजन समूह का अपना ही कृतित्व माना जा सकता है जिसमें किसी जाति, समाज या एक क्षेत्र में रहने वाले समान्य लोगों की परम्पराएं, विशेष प्रवृतियाँ, आचार–विचार, रीति–नीतियाँ, वाणी–विलास आदि समाहित होते है।"[11] आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है– ऐसा मान लिया जाता है कि जो चीजें लोकचित्र से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती है वे ही लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक नाट्य और लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती है। लोक चित्र से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है जो परम्परा प्रथित और बौद्धिक विरेचनपरक शास्त्रों और उन पर की गई टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है।"[12] अतएवं लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है। लोक साहित्य के स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें शिष्ट साहित्य के बारे में भी जानना चाहिए। लोकसाहित्य यदि जनक है तो शिष्ट साहित्य जनिता है। अभिजात्य साहित्य मर्यादा और शिष्टता से बँधा होता है लेकिन उनका जन्म और पोषण लोकसाहित्य से ही होता है। उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है लोक की भाषा अथवा बोली में मौखिक एव परम्परागत रूप से प्रचलित लोक मानस की कंठानुकंठ निर्वैयक्तिक, भावाभेगपूर्ण सम्पूर्ण जीवनानुभूतियों की सजीव अभिव्यक्ति ही लोकसाहित्य है। "लोकसाहित्य श्रुति परम्परा को अपने में संजोये रखता है और यह पीढ़ी दर पीढ़ी कंठानुकंठ परम्परित रहता है।"[13]

सूरसागर श्रीनाथ के मन्दिर में अनवरत रूप से गाये गये कीर्तन के पदों का संग्रह है। मन्दिर में सदैव कीर्तन की ध्वनि गुंजायमान रहती और भगवान के चरणों में लीन रहने वाला यह आत्मगायक नवीन पदों का निर्माण करता रहा, बाद में ये ही पद भागवत के अनुसार व्यवस्थित कर दिए गए जो साहित्य जगत में 'सूरसागर' के नाम से विख्यात हुए। वैसे तो सूरदास भागवत के अनुसार ही कथा कह रहे

थे "कहे कछुक गुरू कृपा ते श्री भागवतानुसार" (सूरसागर द्वितीय स्कन्ध पद संख्या, 36) सूरसागर की कथा के निर्माण में लोक के तार बड़ी सावधानी के साथ पिरोये गए हैं। यह कथा लोक प्रसूत होने के कारण ही इतनी अधिक लोकप्रिय है। दैनिक चर्चा और वर्षोत्सव के क्रम को सामने रखकर लीलाओं के रूप में कृष्ण के जीवन को अभिव्यक्त किया गया है। इन लीलाओं का उद्‌भव और विकास लोक में ही हुआ है। सूरदास जी के विनय पदों में लोकतत्व दिखाई देता है। इन पदों में सूर की दीनता, आत्मसमर्पण, नम्रता तथा कहीं–कहीं मुँह लगे दास की छवि के दर्शन होते हैं। ये पद मौलिकता की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही साथ ही तत्कालीन समाज की हल्की सी सुस्पष्ट रेखा खींचने में इनका महत्वपूर्ण येाग है। संसार की मोहमाया से अप्रभावित भगवान के चरणों में खोया हुआ नेत्रहीन कवि लोक के प्रत्येक क्षेत्र से अवगत था। वह माया के ठेकेदारों का अपनी अंधी आँखों से बहुत ही सजीव चित्रण करता है –

"साँच झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखों खातो
'सूरदास' कछु थिर न रहैगौ, जो आयो सो जातौ।"

सूरसागर के द्वितीय स्कन्ध में सूर ने भागवत की कथा के अतिरिक्त कुछ नवीन प्रसंगों में मौलिकता दिखाई है। नाममहिमा, अनन्य भक्ति महिमा, हरि विमुख निन्दा, आत्मज्ञान, आरती, विराट रूप आदि। इस स्कन्ध में अनेक लोकोपेयोगी बातों का कथन किया गया है। प्रत्येक पंक्ति लोकानुभव में डूबी हुई है। लोक के व्यक्ति को कवि यही कहना चाहता है कि जो भूमि, चाहे वह तीर्थ की ही क्यों न हो यदि वह भयमुक्त न हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए। सूरसागर का चतुर्थ स्कन्ध बहुत ही महत्वपूर्ण है। अनेक वंशावलियों का वर्णन, आध्यात्मिक संकेतों के साथ कथाओं की अभिव्यक्ति तथा उस युग के समाज और धर्म की परिस्थितियों का अंकन किया गया है जिसमें हमें उस युग के समाज की छोटी सी झाँकी देखने को मिल जाती है। सूरसागर का दशम स्कन्ध कृष्ण जन्म से प्रारम्भ होता है। 'सूर' की समस्त कीर्ति का आधार यही स्कन्ध है। इसे कृष्ण के समग्र जीवन का संक्षिप्त भव्य चित्र कहा जा सकता है। भागवत पुराण में कृष्ण जन्म को अलौकिक घटना के रूप में बतलाया है जबकि सूर ने कृष्ण जन्मोत्सव का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक ढ़ंग से किया है। इस प्रसंग में लोकजीवन की रंगबिरंगी धारियों का अनगढ़ सौन्दर्य मन को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। "नंद के घर पुत्र उत्पन्न होने का समाचार पाकर नर–नारियों में कूदने में, बधाई गाने में, सतिया रखने में, मालिन के घर–घर बन्दनवार बाँधने में, नेग आदि के लिए सेवकों के झगड़ने में, ब्राह्मणों को आदरपूर्वक दान देने में, याचकों को दान देकर निहाल कर देने में, ढाढ़ी–ढाढ़िन के नृत्य और गान में, बन्दी, मागध और सूत्र आदि के शुभाशीष देने में, लोक की

प्रभूत सामग्री संजोयी गयी है। इसमें अभिव्यक्त लोक–तत्व इतने स्पष्ट और चमकीले हैं कि वे अपनी कहानी आप कह देते हैं।"[14] कृष्ण को ग्वालों के साथ गाय चराना, कालिया दमन, यमुना किनारे ग्वालों का खेलना, गोपियों की दही की मटकी का फोड़ना, कृष्ण का अपने मित्रों के साथ मक्खन चुराना, गोवर्धन पूजा, गोवर्धन–धारण, राधा–कृष्ण का प्रेम, गोपियों के साथ श्रीकृष्ण का रास रचाना, बांसुरी सुन गोपियों का सुध–बुध खोना, पनघट लीला, दान लीला, बसन्त लीला, होली पर गुलाल–अबीर खेलना, स्त्री–पुरूषों की छेड़छाड़, सामुहिक गान, वाद्य और छीना झपटी में लोक जीवन के चित्र उभर कर आते हैं।

"सर्वाशेन रूप में सूरसागर की कथा लोक की कथा है। लोक के कवि ने लोक की भाषा में लोक विश्रुत कथा को लौकिक प्रतीकों और उपमानों के सहारे इस ढ़ंग से व्यक्त किया है कि हर कंठ में सहजता के साथ वास हो गया है। सूर ने कथा के संविधान में अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय लोक तत्वों का सन्निवेश करके कथा को अत्यधिक आकर्षक बना दिया है।"[15]

2. लोक साहित्य का महत्व –

लोक साहित्य का सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। जनजीवन की सम्पूर्ण झाँकी तथा संस्कृति का पूर्ण प्रतिबिम्ब लोक साहित्य के माध्यम से ही दृष्टिगत हो सकता है। लोकसाहित्य में जनसमुदाय के रहन–सहन, प्रथा, परम्परा, रूढ़ि, विश्वास, सामाजिक मान्यताओं आदि का सच्चा और प्रमाणिक चित्र मिलता है। व्यक्ति, गाँव, समुदाय, परिवार और समय–समय पर होने वाले पर्व उत्सव त्यौहार और मेलों आदि के द्वारा लोकाभिरूचि तथा लोक के आदर्श और नैतिक मान्यताओं के अध्ययन की दृष्टि से ही हो सकती है। व्यक्ति के दुःख, अभाव, संघर्ष, सुकाल, अकाल आदि के माध्यम से लोक जीवन की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन किया जा सकता था। कृषिकर्म, वेशभूषा, आभूषण और भोजनादि के द्वारा समाजिक स्तर और जीवन के यथार्थ रूप को समझा जा सकता है। "लोकसाहित्य का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यक, संगीतिक, मनोवैज्ञानिक, भाषा वैज्ञानिक आदि कई दृष्टियों से महत्व है। वर्तमान युग में लोकाचार, लोकशिक्षा और लोकजीवन की अमूल्य निधियाँ शनैः शनैः विलीन होती जा रही है। ऐसी दशा में हमारा पुनीत कर्तव्य है कि इस धरोहर को संभालने का हर संभव प्रयास करें।

3. लोक विश्वास –

लोक तत्वों का तीसरा महत्वपूर्ण अंग लोक विश्वास है। सच तो यह है कि सामान्य जनता का जीवन लोक विश्वासों पर ही आश्रित होता है। संसार के अध ीशिक्षित समुदायों में ऐसे सैकड़ों विश्वास आज भी प्रचलित है जिनका वर्तमान युग

में कोई भी अर्थ नहीं है। परम्परा द्वारा पोषित और मान्य होने के कारण इनके प्रति किसी प्रकार की आस्था प्रकट नहीं की जाती है। लोक जीवन में अनेक विषयों से सम्बन्धित लोक–विश्वास प्रचलित है जैसे जादू–टोना, दुआ–ताबीज, तंत्र–मंत्र, झाड़–फूंक, देवी–देवता, भूत–प्रेत और इनकी कथित शक्तियाँ आदि सभी अंधविश्वास में आते हैं। ज्योतिष से सम्बन्धित शकुन–अपशकुन, दिशाशूल, स्वप्न–विचार, पक्षी–विचार, वस्तुओं के शुभ–अशुभ लक्षण आदि इन्हीं लोक विश्वासों के अन्तर्गत आते हैं। शिष्ट और सभ्य कहे जाने वाला शिक्षित वर्ग जिसे दोष आडम्बर तथा अंधविश्वास मानता है उसे ही सामान्य जनता अपने पथ प्रदर्शक का आलोक स्तम्भ मानती है।

4. कला –

कला संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग अलग–अलग अर्थों में होता है जैसे 'चातुर्य कर्म' या 'शिल्प' के सन्दर्भ में। कला शब्द का सबसे प्रमाणिक प्रयोग भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। "न तज्ज्ञान न तच्छिल्पं न साविद्या न सकता।"[16] 'कला' 'ललित कला' के ज्यादा निकट है। कला उन सारी जानकारियों या क्रियाओं को कहते हैं जिनमें थोड़ी सी चतुराई की आवश्यकता होती है। देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार कला शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होने के बाद में हम उसे कौशल अभिव्यक्ति मानने से इनकार नहीं कर सकते। महान् दार्शनिक प्लेटो का मानना है कि "प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर वस्तु प्रेमास्पद चुनता है, अतः कला का प्राण सौन्दर्य है। यह सत्य की अनुकृति है।"[17]

लोक साहित्य की भाँति लोक कला भी जन जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है। साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से तथा कलाकार अपनी कला के माध्यम से समाज को जो चित्रण करते हैं वह आन्तरिक सच्चाई का प्रकट रूप होता है। सूरदास के साहित्यानुसार उस समय झरोखे तथा छज्जे आदि बनाये जाते थे जो वास्तुकला के द्योतक हैं। यों तो गोपियों की स्तब्धावस्था के द्योतक के लिए उनके चित्रलिखित हो जाने के उल्लेख हैं। सूर की रचनाओं में उच्च कोटि की कला के साथ ही, लोक जीवन में प्रचलित चित्रकला के विविध रूपों के भी संकेत मिलते हैं। उस युग में प्रचलित चित्रांकन के दो परम्परागत रूप थे एक भित्ति चित्र तथा दूसरे काव्य या वस्त्रों पर अंकित चित्र। भित्ति चित्रों का इस युग में पर्याप्त महत्व था।

"ऐसे कहै नर–नारि।

बिना भीति चित्रकारी, काहे कौ देखे मैं कान्ह कहा कहूँ कहिए।"[18]

.....

जल बिनु तरंग, चित्र बिनु भीतहिं। बिनु चेतहि चतुराई।[19]

सूरदास के विभिन्न पद चित्रांकन की भाव प्रवणता एवं सजीवता को अभिव्यक्त करते जान पड़ते हैं। सूरसागर के पद संख्या 4165 में विरहाकुल अवस्था को चित्रित करती हुई गोपी नारी के वीणा–वादन द्वारा चन्द्रमा के वाहन हरिण के रूक जाने की कल्पना करती है और इस प्रकार उक्त चित्रांकन तथा उसकी निजी अवस्था में भावनागत अभिन्नता प्रतिष्ठित हो जाती है। अतएवं उसी भावमुग्ध दशा में सिंह का चित्रालेखन करती है जिसे चन्द्रमा के वाहन मृगों के भाग जाने से दुःखदायिनी रात्री का अंत हो जाए। चित्रकला की उपर्युक्त दो प्रधान शैलियों के अतिरिक्त वनधातु अर्थात् गेरू, खडिया, रामरज इत्यादि घिसकर शरीर पर भी चित्र अंकित किये जाते थे। इसके अतिरिक्त इनके पदों से द्वार पर चित्रांकन का भी पता चलता है। नागपंचमी पर घर के दरवाजे पर कोयले से साँप का चित्र बनाया जाता था। ये उदाहरण लोक जीवन में व्याप्त चित्रकला का परिचय देते हैं।

इसी तरह संगीत कला का विशद परिचय, कृष्ण काव्य में मिलता है। कृष्ण का बांसुरी बजाना ही इस कला का सबसे बड़ा व अहम उदाहरण है। संगीत–विषयक भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक उद्देश्य मान्यता की अभिव्यक्ति इन रचनाओं में वर्तमान है। संगीत के दो प्रधान अंगों–गायन तथा वादन के सम्बन्ध में उनके अन्तर्गत पाँच प्रकार के वाद्यों, छः रागों एवं छत्तीस रागिनियों के साथ ही सप्त स्वरों के स्पष्ट निर्देश आये हैं। संगीत के नाद–पक्ष को ध्यान में रखते हुए ग्राम, मूर्च्छना, तान आदि का उल्लेख भी आया है। सूरदास ने मूलस्वरों–सरगम को साधकर ताल–लय की गति के क्रम तथा अतीत और अनागत ताल–भेद को भी स्पष्ट किया है –

"सरगम सुनि कै साधि, सप्त सुरनि गाई।
अतीत, अनागत संगीत विचतान मिलाई।
सुर, ताल नृत्य धाइ, पुनि मृदंग बजाई।
सकल कला गुन प्रवीन, नवल बाल गाई।"[20]

सूरसाहित्य में जिन रागों के नाम आते हैं वे हैं – ललित, पंचम, खट, मालकोष, हिंडोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, ईमन, कन्हरौ, अडरना, नायकी, केदारौ, सोरेठ, गौडमलार, विभास, बिलावल, देवगिरि, देखाख, गौरी, श्री, जैतश्री, पूर्वी, होड़ी, आसावरी, रामकली, गुणकली, सुधराई, जैजैवन्ती, सिन्धरा और प्रभाती। ये राग–रागनियाँ सूरसारावली के पद संख्या 1012 से 1018 में प्रकट होती है।

जहाँ तक वाद्ययंत्रों की बात है तो बांसुरी तो मुख्य है, इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण के विचार प्रसंग में ढ़ोल, दमामा, ताल, मृदंग तथा उपंग इन पाँच यंत्रों को बजाने का उल्लेख है जिसे मंगलवाद्य भी कहा गया है। इनके अतिरिक्त वीणा,

किन्नरी, पिनाक, सारंगी, रबाब, तम्बूरा, मृदंग, पखावज, मुरज, चंग, ढ़फ, दुन्दुभी, निसान, पनव, ढ़ाढ़, डिमडिमी, रूंज, आवज, भेरि, पटह, ढोल, खंजरी, नगाड़ा, झाँझ, करताल, गिरगिरी, घंटा, झालरि, मंजीरा, कटताल या अकताल, घुँघरू, ताल, सिंगी, शंख, तूरही, गोमुख, मुँहचंग, शहनाई आदि वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है।

महाकवि सूरदास की रचनाओं में संगीत के अलावा नृत्य परम्परा का उल्लेख मिलता है। इन्होंने 'तांडव' नृत्य का ताल सहित सुन्दर एवं पूर्ण परिचय दिया है।

"तांडव गति मुंडन पर निर्तत मनमाली

पंपंपं पग पटकत, फंफंफं फननन ऊपर बिंबिंबिं विनति करत नागवधू आली।

संसंस सनकादिक, नंनंनं नरदादि गंगंगं गंधर्व सभी देत ताली।

सूरदास प्रभु की बानी किंकिंकिं किहूँ न जोनी चंचंचं चरणधरत अभय भयो काली।"[21]

नृत्य क ताल, लय, यदि गति आदि के दृष्टिकोण से सूर की रचनाओं में वाद्य ध्वनि के साथ उनके संचालन का स्पष्ट परिचय मिलता है जिनमें हाथ–पैरों तथा अन्य अंगों के संकेत के भी स्पष्ट उदाहरण हैं। नर्तकियों की किसी वेशभूषा विशेष का निर्देशन इन रचनाओं में नहीं प्राप्त होता किन्तु नृत्य के साथ कटिभाग में ध्वनि करने वाली कंकिणी पहनने के उदाहरण मिलते हैं। नर्तक की एक विशेष वेशभूषा होती थी जिसमें बोलना, पहनना, केश बाँधना, पैरों में नुपुर धारण करना, कंठ में माला पहनना उनकी सज्जा के अंग कहे जा सकते हैं। सूर की रचनाओं में मिलने वाले उदाहरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस युग का नृत्य पूर्णतया संगीत से संबद्ध होने के साथ–साथ उसमें भावोत्पादन की क्षमता विद्यमान थी।

5. लोक संस्कृति –

जिस प्रकार अंग्रेजी में 'फोक' के आधार पर हिन्दी में लोक शब्द बना है। इसी 'फोक' से फोकलोर शब्द बना है जिसके लिए हिन्दी में अनेक शब्द प्रचलित हैं जिसमें एक है 'लोक संस्कृति'। फोकलोर का अर्थ है – ऐसे लोक समूह का ज्ञान जहाँ संस्कृति और सभ्यता का प्रकाश पूर्णतया नहीं पहुँच पाया है। ऐसे में हम फोक शब्द के लिए ग्राम्य और लोकजन शब्द भी प्रयुक्त कर सकते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'फोकलोर' शब्द को 'लोकसंस्कृति' शब्द के समानार्थी शब्द के रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि इस शब्द में लोकमानस में प्रचलित रीति–रिवाजों, टोने–टोटकों एवं विश्वासों के अभिव्यक्त होने का पता चलता है।

वैदिक काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक धाराएँ प्रवाहित हो रही थी शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति। इसी आधार पर शिष्ट साहित्य और लोक

साहित्य के रूप में निर्माण हुआ। शिष्ट संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो अपने बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ है जबकि लोक संस्कृति से तात्पर्य जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती है जिसकी उत्स भूमि जनता है। "ऋग्वेद में जिन यज्ञ आदि का विधान हुआ है वह अभिजात वर्ग ग्राह्य स्वरूप है तथा अथर्वेद में प्रतिपादित तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, अंधविश्वास आदि साधारण जनता की वस्तुएँ हैं एतएवं ऋग्वेद आदि शिष्ट संस्कृति का निदर्शन है तो अथर्वेद लोक संस्कृति का परिचायक है।"[22]

अतः इस विवेचन के अनुसार लोक संस्कृति समाज के बिना पढ़े लिखे निम्नवर्ग में प्रचलित रीति–रिवाज, आचार–विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सहायक हैं तो शिष्ट संस्कृति समाज के पढ़े–लिखे लोगों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को प्रदर्शित करने में सहायक हैं। लोक संस्कृति और शिष्ट संस्कृति आपस में गहरी जुड़ी हुई हैं। "लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिए संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है।"[23] कोई भी संस्कृति उस समाज का प्रतिबिम्ब होती हैं। सूर–साहित्य की समाज शास्त्रीय व्याख्या करते हुए डॉ. रमेश कुन्तल ने लिखा है "इसमें सामन्तीय उच्चवर्गीय समाज का विलास भी ऐश्वर्य बनकर झिलमिला रहा है, इसमें कृषक समाज की प्रकृत्ति तथा वातावरण भावसंसार को उद्दीप्त करते हैं। इसमें गौचारणकारी समाज की स्वच्छंदता, तन्मयता तथा मूलकृति धर्म स्वतंत्रता है और इसमें कृष्ण भक्ति का वह उज्ज्वलोक भी है जिसे इतिहास ने धर्म साधना के रूप में प्रदान किया है। इसमें गो–चारक समाज को केन्द्र में रखा गया है और ज्यादातर उसके आद्यरूप प्रतिरोपित किये गये हैं। इस भाँति सूर का समकालीन 'कृषक ग्रामीण जीवन' प्रतिबिम्बित रूपान्तरित हो गया है।"[24] कवियों द्वारा वर्णित उस समय प्रचलित संस्कारों, संस्थाओं और मनोविनोद का कृष्ण और उसकी लीला में दर्शन होते हैं। जन्मोत्सव, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, उपनयन, विवाह संस्कार, विवाह निमन्त्रण, मण्डप, गान, गालियाँ आदि की प्रथाएँ, कृष्ण की दिनचर्या, राधा, गोपियाँ, कृष्ण की साजसज्जा, पूजाविधान, व्रत, होली, धमार, रासलीला आदि में तत्कालीन सांस्कृतिक परिवेश प्रतिबिम्बित होता है।

6. धार्मिक जीवन –

इस समय के कवियों द्वारा प्रतिपाद्य आध्यात्मिक जीवन उस युग की धार्मिक परिस्थिति का सम्पूर्णतया प्रतिनिधित्व नहीं करता क्योंकि वह उनके द्वारा अपेक्षित जीवन का आदर्श रूप है। ईश्वर के निर्गुण रूप को योग साधना द्वारा साक्षात्कृत करने वाली नागपंथी साधना का इस युग की धर्मसाधना में अत्यधिक प्रभाव था। सूरदास ने

एक पद के अन्तर्गत अपनी भक्ति में यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से समन्वित अष्टाँग योग को स्थान दिया है किन्तु भजन को आवश्यक भी बताया है।

"भक्ति पंथ को जो अनुसरे। सौ अष्टांग जोग करै।

यम, नियमासन, प्रणायाम। करि अभ्यास होई निष्काय।

प्रत्याहार धारणा ध्यान। कौ जु छाडि वासना आन।

क्रम–क्रम सौ पुनि करै समाधि, सूर स्याम भजि मिटै उपाधि।"[25]

सूरदास के एक पद में यज्ञों के अनुकूल परिस्थिति के अभाव तथा दूसरे उसके समकालीन महत्व की प्रतिष्ठा पर सुस्पष्ट प्रकाश पड़ता है।

"बिरथा जन्म लियो संसार।

यज्ञ, जप, तप नहीं कीन्हौ, अल्पति विस्तार।"

यज्ञ के जैसे तप को भी धार्मिक साधनों के जैसे महत्वपूर्ण माना है। कृष्ण और गोपी संवाद से ज्ञात होता है कि सामान्यतया तपस्वी जटा भस्म धारण करके पंचाग्नि का सेवन तथा गुफा में निवास करते थे। उस समय तीर्थों की संस्कृति का भी महत्व था।

कुलदेवता की पूजा तो चिरकाल से चली आ रही है। विवाहादि मांगलिक अवसरों पर विशेष रूप से उसकी पूजा का विधान है। सूरसाहित्य में कुलदेवता के रूप में 'इन्द्र' की पूजा का परिचय मिलता है। विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, शिव, सूर्य, पार्वती, कात्यायनी देवी, गणपति और शारदा की पूजा का भी उल्लेख है। गणपति और शारदा की स्तुतियाँ प्रायः मंगलाचरण के रूप में है। अच्छे–बुरे कर्म को भी मान्यतानुसार पाप–पुण्य का कारण माना जाता था जिसके आधार पर स्वर्ग–नरक की प्राप्ति का विश्वास किया जाता है।

गंगा और यमुना को पुन्यसलिला मानकर उनके स्नानों से पापों के विनाश की आस्था भारतीय जनसाधारण में चिरकाल से प्रतिष्ठित रही है। उस युग में गंगा–जमुना के स्नान तथा पूजन आदि समकालीन धार्मिक कृत्यों के अंगरूप थे। सूरदासजी कहते हैं कि ईश्वर ने हमें मानव–शरीर भगवान के नाम स्मरण के लिए दिया है। उनके अनुसार पाप और मोह की तरंगों में तृष्णा से युक्त इस संसार सागर में डूबने वाला जीव हरिस्मरण रूपी नाव के बिना डूब रहा है।[26]

7. साधना मार्ग –

कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी भक्ति का आधार जिस साधना मार्ग को बनाया

सूर भी उसी श्रेणी में आते हैं। वे मानव कल्याण के लिए जिन विविध उपायों का अनेक प्रकार से निर्देश किया है उनका समाहार भगवत्भक्ति में हो जाता है। इस काव्य का मुख्य आधार भगवान का व्यक्तित्व अथवा चरित्र है जो 'श्री भागवत' द्वारा प्रस्तुत हुआ है। श्रीमद्भगवत में श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, बंदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन, इन नव अंगों वाली नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया गया है।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद–सेवनम्।

अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।"[27]

सूरसागर के पद 661 से 65, 672, 674, 683, 685, 692, 994, 696, 697, 698, 700, 702 पद इसी भक्ति से भरे हुए हैं। सूरदास का मानना है कि सर्वेश्वर अव्यक्त तथा निराकार है, साथ ही यह भी मानते है कि वह पृथ्वी के उद्धार, भक्तों के प्रतिपालन तथा दुष्टों के विनाश के लिए अवतरित होता है और नाना प्रकार की लीलाएँ करता है –

"वेद उपनिषद जासु कों निरगुनहिं बतावै।

सोई सगुण ह्वै नंद की दाँवरी बंधावै।"[28]

सूर द्वारा शिव के व्यक्तित्व के साथ कृष्ण के समन्वय आदि बातों से प्रमाणित है–

"हरिहर संकर नमो नमो।

अहिसामी, अहि अंग विभूषण, अमितदान विषहारी।"[29]

सूरदास जी ने कृष्ण की भक्ति के साथ–साथ ब्रज को भी महत्व दिया है। अपने अराध्य की लीलाभूमि होने के कारण ब्रज सूर के लिए एक तीर्थ के समान है। गोवर्धन की पूजा, सरिता तट, यमुना तट और वृंदावन धाम उतने ही पूजनीय हैं जितने की कृष्ण। सूरदास जी ब्रज के महत्व को अनेक पदों में प्रस्तुत करके वृंदावन की धूल बनने की कामना करते हैं इतना ही नहीं तीर्थयात्रियों को ब्रज की परिक्रमा करके पापमुक्त होने का आश्वासन भी देते हैं। इनकी रचनाओं में समकालीन विविध उपासनाओं, धार्मिक जीवन की मान्यताओं तथा आस्थाओं को उपस्थित करने वाले अनेक महत्वपूर्ण तथ्य मिलते हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

उस युग के अधिकांश कवि भगवतलीला के गान कीर्तन आदि में मग्न रहने वाले भावुक कवि थे फिर भी सामाजिक जीवन के बीच रहने वाला कोई भी सहृदय उससे पूर्णतया निरपेक्ष नहीं रह सका। समाज अनेक मतपंथों की साधना से प्रभावित

था जिनमें वेष्णोत्तर सम्प्रदायों में नाथ पंथी साधना का प्रचार–प्रसार अधिक था। जनता में साधु, सन्यासियों तथा भक्तों के प्रति श्रद्धा थी, धार्मिक जीवन में वेद पुराण स्मृतियाँ आदि शास्त्रीय ग्रंथों के प्रति आस्था थी। बहुदेवोपासना केवल धार्मिक जीवन तक ही सीमित नहीं थी अपितु उसमें भौतिक उत्कर्ष की भी आशा की जाती थी और इस कारण सिद्धान्ततः कईयों से सहमति न होते हुए भी उसकी परम्पराएँ दृढ़ता से जमी हुई थी।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद, पृष्ठ 3, 53, 12
2. संस्कृत हिन्दी कोष – वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 1327
3. जनपद वर्ष 1, अंक 1, पृष्ठ 65
4. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर – डॉ. रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 877
5. रामचरित मानस (बालकाण्ड) – तुलसीदास, पृष्ठ 34
6. ठाकुर ग्रंथावली, पृष्ठ 8
7. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोकतत्व – डॉ. जयदेव कुमार शर्मा, पृष्ठ 16
8. लोक साहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव, पृष्ठ 130
9. लोक साहित्य विज्ञान – डॉ. सत्येन्द्र पृष्ठ 36
10. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्व – डॉ. पार्कर, पृष्ठ 28–29
11. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृष्ठ 49
12. विचार और वितर्क – आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 206
13. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोकतत्व – डॉ. जगदेव शर्मा, पृष्ठ 13
14. सूरसागर में लोक जीवन – डॉ. हरगुलाल, पृष्ठ 53
15. सूरसागर में लोक जीवन – डॉ. हरगुलाल, पृष्ठ 62
16. पेण्डेट रॉक शैल्टर फ्रॉम राजस्थान –विजय शंकर श्रीवास्तव, पृष्ठ 278
17. राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा – विजय कुमार, पृष्ठ 110
18. सूरसागर – सूरदास, पद संख्या 2352
19. सूरसागर – सूरदास, पद संख्या 4549
20. सूरसागर – सूरदास, पद संख्या 1769

Dr. Shashi Goel
Visiting Faculty
Qatar University
DOHA

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

THE PERSISTENCE OF GENDER IDEOLOGIES & WOMEN LABOR

As we all living in 21st century, women actively participating in labor force. Women entry into the labor force has taken place at every level, from low paid job through all the major profession. Gender ideology refers to attitudes regarding the appropriate roles, and responsibilities of men and women in society. Traditional gender ideologies divided labor that the separation of the world into two distinct sharpens the public sphere of work, business, politics and culture and the private sphere the home, domestic life, and childcare.

The so-called traditional system of father, who head out to fulfill their family roles through breadwinning activities. Through out the history and the world, divisions of labor have developed along the lines of sex, and is one of the most fundamental ways that sex distinctions are expressed in social institutions.

Like race, masculinity and femininity are socially constructed concepts that convey powers relationship linked to behavior and roles in the society. There are different prescriptions for masculinity and femininity in societies that are racially and ethnically diverse, and the gendered behavior. Thus, boys and girls who adopt and follow ideas of how to behave, look, talk, walk, dress and relate to others may be doing what is tabooed by the dominant group's gender ideology, justifying their devaluation and discrimination against them.

Though we can recognize the historical and social nature of the categories " women and men", and increasingly view gender as a continuum, for most of the world's cultures women/men is a fundamental binary and is often linked with other dichotomous conceptualizations.

One of the dichotomies frequently associated with gender is that of the household and the world beyond the household. This is described in different ways in different places: in china as a split between inner and

outer (nei-wai), in ancient Greece as a spilt between public and domestic, among the Bun people of Papua New Guinea as a split between public and private. These arguments suggest that the sexual division of labor whereby women and men specialize in different activities is also linked to the relative status of each sex. In particular, the relative contributions of women's and men's labor to survival influence the degree to which sex is socially valued and hence the degree of sex inequality.

Sex division of labor from the first hunting and gathering societies emerged thousand of years ago. Yet even in the twenty first century, women and men continue to do different kinds of work. Industrialization profoundly altered these arrangements. Industrialization's impact on work and households was intrinsically connected to its role in reshaping gender roles. Despite the fact that many working class and minority women employed to pay, the experiences of the middle class became the basis for cultural norms and employer practices that defined the work place, workplace, and workers as " male".

Major changes in the occupational and structures of most developed countries began in the 1970s and reached full force in the 1980s and 1990s. These changes are leading to dynamic reconfiguration of work and labor markets which, although felt more strongly in developed countries, are also starting to ripple out of developing countries, are also starting to ripple out of developing countries.

Women began to enter the workplace in great member. Women had also had high labor market participation during world war II as so many male soldiers were away, women had to take up jobs to support their family and keep local economy on track.

Women and men have always worked, but the work they do has changed over time. Before industrialization, women and men both worked at home. In this agriculture based economy, women and men each contributed to the tasks essential for survival, such as raising food. Industrialization changed the ways that people lived and worked. Women young women from farm families entered the factories first as wage laborers. Most people in the India by working for wages for someone else- women and men both worked for pay, with the exception of middle class women whose lives revolved the care of children and family.

Work and family are increasingly intertwined. Balancing these two

spheres is not always easy, however. The “time bind” (1997) refers to the difficulties people face as they try to meet their employer’s expectations and their obligations to their partner and children. Hochchild argues that some people have begun to prefer their work lives to their home lives; they feel a sense of accomplishment on the job and increasingly rushed and frustrated at home. Women with families may be especially likely to feel this way, since women have primary responsibility for household work and childcare.

Work and family relations have been intertwined historically with conceptions of gender. A belief that work and family work and family were “ separate worlds” corresponded with a belief that women and men had distinct, non- overlapping responsibilities and roles. Accordingly women’s move into the paid labor force has been accompanied by a recognition that work and family are not separate, but rather they intersect in complex ways. As relations between women and men continue to change, relations between work and family are likely to be redefined as well. Work and family are not static, unchanging institutions, but reflect and adopt to developments in the wider society.

The vast majority of women and men today work, for pay. Moreover, majorities of both sexes are employed full time. Men and women work for pay even when they are parents.

In the lost there decades, women- especially married women have been pushed and pulled into the paid labor force. Both the costs of staying at home and rewards of working for pay have increased. The forces pushing women out of the home were both economic and social. The major economic force was the declining wages of men.

As men’s wages fell, it became more and more difficult for them to support their wives and children. This economic reality helped to push many married women into the paid labor force- while women’s paychecks were not equal to those of men’s women’s salaries helped considerably to ease the economic burdens on families. Indeed, household with two wage earners continue to earn considerably more than households with only one employed.

Women employed for pay were often forced to decide whether to be a women or a worker. Success in one role however, implied failing at the other. In addition, men who worked for pay were assumed to be

fulfilling their family obligations through this act, while employed women were assumed to be abandoning their family responsibilities.

The female labor force participation rate has increased steadily over the past three decades (1980-2003) in developed and developing countries and across all regions. Of the 151 countries listed in the 2005 WDI, 109 experienced an increase in female labor force participation rates over the period 1990-2003. In the majority of cases, this is because the female rate has risen substantially while the male rate has fallen. Of the 109 countries recording an increase in female participation, 84 countries also experienced a fall in male participation rates. (see the table)

Female labor force participation rates 1980-2003

Country	1980	2003	1980-2003
World	39.1	60.9	21.8
Low-income countries	37.9	54.6	16.7
Middle income countries	40.2	65.1	24.9
East Asia and Pacific	42.5	75.0	31.5
Europe and Central Asia	46.7	66.8	20.1
Latin America and the Caribbean	27.8	46.3	18.5
Middle East and North Africa	23.8	34.5	10.8
South Asia	33.8	47.3	13.5
Sub-Saharan Africa	42.3	62.3	20.0
High Income	38.4	63.7	25.3

Source: World Bank 2001b and 2005b

Despite enormous and persistent gender ideology, inequality in the society, women are part of that society; women are there part of that society and to stay. Women work for same reasons that men work- to support themselves and their families, to experience the sense of accomplishment, efficacy, and competence that comes from succeeding in the workplace.

Changes in labor force patterns both reflect and give rise to changing

roles for men in the family structure. Both women and men work because they want to and because they have to. The social and economic realities of developing countries like India families' lives these days are that both partners are working, which means that both are struggling to balance work and family life. Men find themselves simultaneously called upon to do more childcare- related tasks, albeit for fewer children per family, while at the same time they find their ties and claims on the family weekend, particularly in the cases of divorce or single parents.

Due to increasing women labor force, the family relation and like, responsibilities need to be redefined where women and men can equally participate in labor force and family life in terms of childcare, housework and other domestic responsibility. It will reduce the dichotomies in household, divorce, and stress and beyond household work balance, and healthy family and society.

Reference:

* Aparna Joshi, Need for Gender Sensitive Counselling Interventions in India, Psychological Studies,2015, 60, 3, 346
* Daniel L. Carlson, Amanda J. Miller, Sharon Sassler, Sarah Hanson, The Gendered Division of Housework and Couples' Sexual Relationships: A Reexamination, Journal of Marriage and Family,2016, 78, 4, 975
* Daphne E. Pedersen, Quantity and Quality: A More Nuanced Look at the Association Between Family Work and Marital Well-Being, Marriage & Family Review, 2017, 53, 3, 281
* Eric Anthony Grollman, Americans' Gender Attitudes at the Intersection of Sexual Orientation and Gender, Journal of Homosexuality, 2017CrossRef
* Katie Newkirk, Maureen Perry-Jenkins, Aline G. Sayer, Division of Household and Childcare Labor and Relationship Conflict Among Low-Income New Parents, Sex Roles, 2017, 76, 5-6, 319
* Lisanne Jansen, Tijmen Weber, GerbertKraaykamp, Ellen Verbakel, Perceived fairness of the division of household labor: A comparative study in 29 countries, International Journal of Comparative Sociology, 2016, 57, 1-2, 53
* Rebecca M. Horne, Matthew D. Johnson, Gender role attitudes, relationship efficacy, and self-disclosure in intimate relationships, The Journal of Social Psychology, 2017, 1
* Renzo Carriero, Lorenzo Todesco, The Interplay between Equity and Gender Ideology in Perceived Housework Fairness: Evidence from an Experimental Vignette Design, Sociological Inquiry, 2017, 87, 4, 561

* Spence, J. T. (1993). Gender-related traits and gender ideology: Evidence for a multifactorial theory. Journal of Personality and Social Psychology, 64(4), 624-635. http://dx.doi.org/10.1037/0022-3514.64.4.624

* Theodore N. Greenstein; Gender Ideology and Perceptions of the Fairness of the Division of Household Labor: Effects on Marital Quality, Social Forces, Volume 74, Issue 3, 1 March 1996, Pages 1029-1042, https://doi.org/10.1093/sf/74.3.1029

* Xiaodong Sun, Kaisheng Lai, Are mothers of sons more traditional? The influence of having son(s) and daughter(s) on parents' gender ideology, The Journal of Chinese Sociology, 2017, 4, 1

❑ ❑ ❑

Dr. Rita Pratap
Editor (Atishay Kalit)
Ex-Associate Professor
Deptt. of Drawing & Painting
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

SACRED BUDDHIST SITES IN SRI LANKA

On a family tour to Sri Lanka I happened to visit numerous sacred Buddhist sites.

In the steps of Lord Buddha, A large foot print embedded atop a 2,234 meter mountain is Sri Pada, According to Buddhists, this is said to have been made by Lord Buddha on his sacred visit to Sri Lanka in 523 B.C. Each year this site draws tens of thousands of pilgrims, as it is considered as one of the several places associated with Lord Buddha.

As the story says Siddhartha Gautama was born into a royal family in India. Deeply disturbed by the sufferings of those around him, he rejected his comfortable life and for many years wondered from one place to another reaching for a way of life that would help alleviate the sufferings of mankind. Finally after a period of meditation under a Ficus religious or bo tree, he attained enlightenment, becoming known as the Buddha or Enlightened one. He traveled throughout India and visited Sri Lanka on three occasions, spreading the doctrine (Dharma) that is the foundation of one of the world's major faiths and the faiths of the majority of Sri Lankans.

In 528 B.C. Lord Buddha visited Sri Lanka for the first time to avert a war between two rival factions of a clan. While Lord Buddha was still alive, a dagoba – believed to contain locks of his hair – was built on the site where he is said to have levitated, terrifying and instantly converting the primitive loval Veddhas to the Buddhist faith.

This ancient dagoba, or dome-shaped stupa at **'Mahiyangana'**, east of Kandy has been added to for more than two thousand years and is revered as one of the holiest Buddhist sites in this country.

After five years later Lord Buddha returned to Sri Lanka again is an attempt to prevent a war. Here too today, bell-shaped dagoba marks the

site on a small island to the west of Jaffna. It is known as Nagadeepa to Sinhalese and Nainativee to the Tamils. Near to dagoba is a robust tree, the cutting of which is supposed to have been brought with Lord Buddha.

After leaving the mountain peak of Sri Pada, where, according to legend, he left his footprint. Lord Buddha is said to have meditated at a spot near the east coast, a remote region between Batticaloa and the beautiful Arugam Bay. **The Digavapi degoba** was built here in the 2nd century B.C.

Another sacred relic, A Tooth of Lord Buddha, is enshrined at Sri Dalada Maligawa or the **Temple of the Tooth** in Kandy in 520 B.C. Lord Buddha was invited to preach by the king of Kelanuja.

Today, the **Kelaniya Raja Maha Vihara** sits in a park – like setting, just 9 kilometers from the heart of Colombo. The main court yard contains a shrine house or Vihara, a stupa (dagoba), and a sacred bo tree, the type under which Lord Buddha gained enlightenment.

This Vihara was destroyed and rebuilt several times, the current incarnation having been constructed in the early 20th century. This is arguably one of the most interesting viharas in the country, for inside it, almost every square, centimeter of the walls, and ceiling is decorated with fiascoes, executed by a famous local artist.

Scattered communities accepted the doctrine brought to them personally by Lord Buddha, but it was until 247 B.C., when king Devanampiyatissa was converted by Mahinda (son of the devout Emperor Ashoka), that Buddhism became the major religion of Sri Lanka. The hill where this conversion took place, east of the ancient city of Anuradhapura was hence forth known as Mihintale, or the mountain of Mahinda. Mahinda was entrusted by Emperor Ashoka with a cutting from the sacred bo tree under which Lord Buddha attained enlightenment, placing it in a golden vase. It was eventually planted at Anuradhapura, and today 12,240 years later, worshippers still come to pray at the world's oldest documented tree, the **Sri Maha Bodhi.**

**** During my personal visit to Sri Lanka***

DurgeshYadav
Teacher,
Sophia Secondary School
Khetrinagar, Jhunjhunu

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

CHILDREN: THE PRICELESS TREASURE

"To me there is no picture so beautiful as smiling, bright-eyed happy children; no music as their clear and ringing laughter."

Childhood is about innocence and playfulness. It's about joy and freedom and unlimited fun. It is bounteous shower of love and care; realm of imagination and happiness of growing up.

Children are the living messages we send to a time we will not see. They are indeed the world's

most valuable resource and its best hope for the future. They are not things to be moulded but people to be unfolded. Children in real terms are the keys to the paradise. Every child is a different kind of flower and all together makes this world a beautiful garden. Let's cherish our children for they are the footprints we will leave behind us. May each child receive these gifts :

" The Blessings of Peace; The Beauty of Hope; The Spirit of Love and The Comfort of Faith."

Dear children,

You are precious in every way; You are the sunshine in our day.

The joy in our soul and the love of our life.

You are the reason of our laughter and smile.

Each day of our lives we make deposits in the memory banks of our kids. They are great imitators so we should give them something worth to imitate. Today's children close their ears to advice but open their eyes to example. Parents are the ultimate role models for children. It is very necessary for us to realise that every word, movement and action has an effect and influence on the impressionable minds of our kids. Always

remember that children and flower gardens reflect the kind of care they get. The greatest gifts you can give to your children are the roots of responsibilities and the wings of independence.

Parenting is a sweet and understanding relationship with a unique little person God entrusted to us to nurture, love and raise. The magic of wonderful parenting does not lie in the presents gifted to the children but in the all-time presence to the needs of the children. A parent's love is something that no one can explain. It's made of deep devotion and of sacrifice and pain.

A parent's prayer

Give me patience when little hands

Tug at me with ceaseless, small demands.

Give me gentle words and smiling eyes

To keep my lips from hasty, sharp replies.

Let not fatigue, confusion and noise

Obscure my vision of life's fleeting joys.

So when in years to come by my house is still

Beautiful memories its rooms may fill.

In the present times of modernisation and advancement, we as parents need to play our roles perfectly and earnestly so as to raise good and responsible children who will prove to be sincere human beings. For without noble humans we cannot imagine the true colours of humanity. So we should think right now before we act.

Children are a priceless treasure

Their real worth one cannot measure.

Sent from the heaven above

To fill our lives with so much pleasure.

❑ ❑ ❑

Mk- véi.kk 'kDyk (शोध निर्देशिका)
ihrh jkuh (शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. B
Sr. 12, 2017
ISSN : 2277-419X

lkUn;loknh dyk leh{kk vkj i;kx 'kDy

मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है और प्रत्येक मनुष्य स्वयं में किसी ना किसी रूप में प्रतिभासम्पन्न है। प्रतिभा से ही वह अपनी भूख को कला व कला समीक्षा के माध्यम से ही पूर्ण करता है व मानव युग–युगीन वैचारिक एवं भावात्मक संचित श्रेष्ठ साधनामय प्रवृत्ति हमें कला समीक्षा में मिलती है। सुप्रसिद्ध कला समीक्षक, कवि, कला समीक्षक, लेखक प्रयाग शुक्ल ने भारतीय कला समीक्षा के विविध पक्षों के निर्देशनात्मक आयामों को सुंदर लेखों के माध्यम से व्यारव्ययित किया है।

''अतः किसी भी कला–समीक्षक के कृतित्व की मूल प्रेरणाओं को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताओं का विवेचन आवश्यक है, क्योंकि व्यक्तित्व में जीवन के सभी मानसिक शारीरिक और सामाजिक साहित्यिक क्रियाओं को समावेश होता है। प्रयाग शुक्ल जी के सौन्दर्यवादी कला लेखन संसार की और समीक्षाओं के मूल, कला सरोकारों को आत्मसात् करने के लिए उनके व्यक्तित्व के लक्षणों की पहचान और उनका विश्लेषण आवश्यक है।''

कला समीक्षा क्षेत्र में समीक्षाएँ, प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं को लेकर सृजन करने तथा एक समूची पीढ़ी का नेतृत्व करने में प्रयाग शुक्ल जी स्वयं प्रेरक बिन्दु बने हैं तथा रोचक, कार्य व जिज्ञासा अपने आप में एक विशिष्ट महत्व रखती है।

''युंग ने कला समीक्षा के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार प्रकट किये हैं। युंग ने चेतन के भी दो भाग किये व्यष्टि अचेतन और समष्टि अचेतन युंग का मत है कि कला समीक्षक का मूलाधार व्यष्टि अचेतन न होकर सामूहिक अज्ञात मन है। यही उत्प्रेरणाओं का मूल है। असृष्टिकृति समीक्षक की आत्मा में एक प्राकृतिक शक्ति होती है जो निरंकुश शक्ति या कुशल सूक्ष्मता से अपने उद्देश्य को जिसे प्रकृति अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए रचनात्मक आवेग के वाहक के सुख–दुख से निरपेक्ष होकर तैयार करती है।

रचनात्मक आवेग धरती में रहकर उसी से अपना पोषक तत्व ग्रहण करने वाले वृक्ष के समान मनुष्य के भीतर रहता है और विकसित होता है इसलिए रचना प्रक्रियाँ

को मनुष्य की आत्माओं से संलग्न एक जीवित वस्तु मानना उचित होगा।

कला समीक्षा व्यक्तिगत अनुभव के स्थान पर जातीय गुणों को दर्शाती है।'' संवेदनशील मुखाकृति वाले एवं आकर्षण व्यक्तिगत के प्रयाग शुक्ल जी आधुनिक भ. ारतीय कला समीक्षकों में प्रमुख स्थान रखते है। लेखन रंगमंच सिनेमा और साहित्य पर लेखन करना आपकी कलात्मक रूचि के प्रमुख स्रोत रहे। आपका पालन–पोषण सुन्दर कलात्मक वातावरण में हुआ। बाल्यकाल से ही आपकी प्रतिभा स्पष्ट परिलक्षित होने लगी थी। कोलकाता में आपके पिताजी की स्वयं की अंग्रेजी पुस्तकों की दुकान थी। पुस्तकों का प्रभाव हमें आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर स्पष्ट होता है। आपने विविध कला का अनुगमन कर आत्मचिन्तन और परिश्रम से सर्जना का नवीन मार्ग प्रशस्त किया।

''प्रयाग शुक्ल जी की संवेदना में अनुभूतियाँ कल्पनाएँ, भावनाएँ और संवेग अधि ाक गहरे उतरकर उनके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। उनमें यदि व्यक्ति–चेतना है तो समाज चेतना भी निहित है, प्रकृति सौन्दर्य है, तो जीवन का यर्थाथ भी समाहित है। एक कला समीक्षक के लिए संवेदनशील अन्तश्चेतना कथ्य को बारीकी से पकड़ती ही नहीं, उसे गहराई से अभिव्यक्त भी करती हैं कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल जी की अन्य रचनाओं में ऐसी विशेषता सर्वत्र देखने को मिलती है। उनके व्यक्तित्व में आस्था, विश्वास और आत्म–संघर्ष की चेतना निरन्तर विकसित है।''

ध्यातव्य है कि प्रयाग शुक्ल जी के समूचे व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उनकी उपर्युक्त समूची पृष्ठभूमि ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित अवश्यक किया है, पर उनकी अपनी विकसित सोच और व्यापक मानवीय संवदेना ने उन्हें समकालीन समीक्षा में अपनी एक अलग पहचान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्माण भी किया है।

''आधुनिक दृष्टि से कला समीक्षा को हम ऐसी क्रिया मान सकते हैं जिसमें आन्तरिक अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से होती है। कला समीक्षा की धरोहर को आगे बढ़ाने के लिए प्रयाग शुक्ल ने कला समीक्षा की आधारभूत कल्पना में क्रान्तिक. ारी परिवर्तन किए और प्रचलित सभी प्रतिबन्धों को नकार कर स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना व इन्होंने अपनी समीक्षाओं में नवीन भाषा, विषयों की विविधता, कलाकृति के स्वच्छन्द प्ररिप्रेक्ष्य तले चित्रों के काल्पनिक संसार में अपनी निजी भाषा प्रदान की।''

अपने परिवेश के प्रति सजग रहने वाले कवियों मे प्रयाग शुक्ल एक कला समीक्षक के साथ कवियों में इनका नाम अग्रणी है। प्रकृति और प्रेम के शुरूआती दौर की उनकी कविताओं में भी यह प्रवृत्ति हमें देखने को मिलती है। जहाँ कवि

का प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय होता है। वह समाज की गिरावट को पिछड़ेपन को, विसंगति को, शोषण को केवल जानता–पहचानता ही नहीं, उसका सहभागी भी होता है। प्रयाग जी का सम्पूर्ण लेखन समाज के साथ जन–जन के साथ जुड़ाव एवं रचना के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए दूर–दूर ले जाता है। कवि की शक्ति जहाँ उसके भाव और भाषा में होती है। वहीं वस्तु–विधान का भी महत्व कम नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रयाग शुक्ल जी का काव्य–सृजन समाजोन्मुख ही रहा। वे कभी अति व्यक्तिवादिता के भंवर में नहीं पड़े।

''प्रयाग शुक्ल की कविता आत्मचिन्तन की ओर मुड़ती है। एक कवि की रचना सारा लेखकीय जीवन किसी भी संघर्षरत रचनाकार की तरह से हमारे सामने है। प्रयाग शुक्ल युगद्ष्टा होने के साथ–साथ भविष्य दृष्टा भी है।''

कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि प्रयाग शुक्ल एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि और विशिष्ट कवि है इनकी कविता में कथ्य और शिल्प का आकर्षण सन्तुलन है। इनकी कविता न तो इतनी सपाट है कि कविता ही न रहे, और न ही इतनी सूक्ष्म और जटिल है कि पहेली बन जाये। ऊपर से अत्यन्त और सामान्य दिखने वाले प्रयाग शुक्ल की कविता वर्तमान भारत की विडम्बनात्मक स्थिति को गहरी अन्तर्दृष्टि के साथ व्यक्त करती है।

''वृक्ष छायादार उनसे,
छन रही है रश्मियाँ।
झर रही है बिछे पत्तों पर
अधीरा टहनियाँ!
यहाँ ये एकत्र होतीं
जा रही है छाँह में,
बनाती ये रूपक्रम, सौ–सौ,
अदेखी राह में।''

प्रयाग शुक्ल की लोक दृष्टि के फैलाव में ही उनका व्यक्तित्व भी झलकता है व इनके ह्रदय का अन्तर्वेग मानववादी है। मौलिकता और रचना की चेतना की समीकृति उनकी कविता की शक्ति को बढ़ाती है। ''प्रयाग शुक्ल की कविता आत्मि चन्तन की ओर मुड़ती है। एक कवि की रचना सारा लेखकीय जीवन किसी भी संघर्षरत रचनाकर की तरह से हमारे सामने है। उनके प्रकाशित खण्ड भी इस बात की गवाही देते है कि कैसे–कैसे लेखक स्थितियों से जूझता है। मूल्यों से स्खलित हो

जाने की प्रक्रिया से बचता है।''

कवि प्रयाग शुक्ल युगदृष्टा होने के साथ–साथ भविष्य दृष्टा भी है। इसलिए उस निशान की पहचान कवि को अधिक होती है। कवि की कविता उसका अन्तदर्शन है। इस अन्तर्दशन को साक्षात्कार में बदलने के लिए रचनाकार ने कई प्रतीक और बिम्ब ऐसे उभारे हैं। जो कथन की भंगिमा को और चमका देते है। यही कविता की भी सार्थकता होती है।

''कला समीक्षक कवि प्रयाग शुक्ल की कला निबन्धों की सम्प्रेषिता इनकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। आत्मानुभव को आत्मचिन्तन की प्रक्रिया से पहचानते हुए भी वे विषय की व्यापकता और जटिलता की गहरी समझ के साथ उसका विश्लेषण करते हैं। जटिलता के साथ उसका विश्लेषण करते हैं। जटिलता की समझ के लिए वह विषय को गैर जरूरी विस्तार के ब्योरों से बचाते है। लेकिन ऐसा करते हुए भी, अपनी तत्वदर्शिनी दृष्टि से उसे दर्शकों तक अपनी सम्पूर्ण जटिलता के साथ सम्प्रेषित करने में सफल होते है। प्रयाग शुक्ल अपनी सारी सूक्ष्मता गहन परम्परा बोध, अध्ययन मनन के बावजूद इन सभी निबन्धों का गहरा सम्बन्ध, उनके द्वारा किये गये कला निबन्धों लघु कथाओं में जारी चिन्तन है।''

अतः प्रयाग शुक्ल के कला निबन्धों व लघु कथाओ में बाह्य यथार्थ या वस्तुगत में वास्तविकता मौजूद है। इस प्रकार कला समीक्षा व कला निबन्धों के विविध पक्षों की विचारधाराओं एवं उनके मनोवैज्ञानिक पहलू को जानने की चेष्टा की और इनके साथ ही यह भी जाना की विविध कला निबन्ध व लघु–कथाएँ, कला समीक्षा के विविध पक्षों को प्रस्तुत करती है। कुछ समीक्षकों का मानना है कि संज्ञानात्मक विचारधाराएँ कला समीक्षा के इन पक्षों के साथ वर्तमान काल में एक अन्य प्रकार की कला समीक्षा कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल ने प्रस्तुत की।

''इसी के साथ कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल को याद करते हुए हम उन्हीं परिकल्पनाओं में जाते है। जहाँ एक समीक्षक का 'सर्वस्व' हमें मिलता है और समीक्षकों को सीख मिलती है कि 'सर्वस्व' समर्पण के बिना कला समीक्षा सम्पूर्ण नहीं होती है। कला समीक्षा अपने को बार–बार खोजने पाने की विकलता और उनमें विनयस्त कर देने की आकांक्षा ही तो होती है।''

''इसी प्रकार प्रयाग शुक्ल सामाजिक राजनैतिक बौद्ध एवं ऐतिहासिक वातावरण की पुष्टि कर अपने वातावरण व समाज को प्रभावित करते है। वह सदैव देश–काल के बन्धनों में आबृद दृष्टि रखते है। प्रयाग शुक्ल ने अपनी समीक्षाओं में वातावरण सृजन को महत्ता दी ही तथा उन्होंने कला व कलाकार को बाह्य जगत

तक सीमित नहीं रखा।

''प्रयाग शुक्ल की कला समीक्षा के दृष्टिकोण कला को बिन प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते। इनका मानना है कि चित्र के द्वारा कला का रसास्वादन किया जा सकता है तथा कला और कला समीक्षा के पक्षों के दो मूलभूत नियमों को आधार लेकर प्रस्तुत किया जा सकता है। पहले कलाकृति या कोई भी कृति एक दृश्य रूप में प्रत्यक्षण के नियमों पर प्रकट होती है। दूसरा इस क्रिया में भौतिक कलाकृति की बात करते है तो दर्शक की चित्र के प्रति होने वाली मनोवैज्ञानिक क्रिया भी उसमें समाहित होती है।''

इस प्रकार कला समीक्षा को नया मोड़ मिला, जिससे कला समीक्षा के क्षेत्र का विकास हुआ और समीक्षा के नये आधार सामने आए। इस संदर्भ में प्रयाग शुक्ल ने रामकिंकर बैज के मूर्तिशिल्प के विषय के बारे में चर्चा की है जो एक मूर्तिकार भी है और चित्रकार भी है। ''रामकिंकर भारत के उन पहले आधुनिक कलाकारों में से है, जिन्होंने खुले आकाश के नीचे काम करने की शुरूआत की शांति निकेतन के वातावरण ने उसमें उनकी मदद की। उनके काम करने का ढंग अपना निराला है। उन्होंने पत्थर, सीमेन्ट, कंक्रीट, प्लास्टर में मूर्तिशिल्प बनाये है। उनके मूर्तिशिल्पों के विषय संथाल स्त्री–पुरूष रहे हैं, उन्होंने कई व्यक्तियों के चेहरे भी मूर्तिशिल्पों में गढ़े है। कला समीक्षा के मूलभूत विशेषता को समझने के लि मूर्तिशिल्प एवं कला को जानने का प्रयास ही मनोवैज्ञानिक सौन्दर्यशास्त्र में किया गया।'' तथा चित्र के तत्व रंग या वर्ण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है, मनुष्य के जीवन में भी रंगों का महत्वपूर्ण स्थान है वर्ण पूर्णतः प्रकाश व दृष्टि पर निर्भर तत्व है एक की भी अनुपस्थिति रंग के ज्ञान में बाधा सिद्ध होती है। प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई रंग अवश्य होता है और प्रकाश की मात्रा के कम या अधिक होने से एक ही वस्तु के अलग–अलग तान दिखायी पड़ती है। रंगों की कला समीक्षा के स्रोत के रूप में अध्ययन किया गया।

इस संदर्भ में प्रयाग शुक्ल ने आज की कला में जलरंग माध्यम पर समीक्षा की है जो इस प्रकार है

''जलरंगों में काम करने का चलन बहुत पुराना है। ऐसे रंग जिन्हें पानी के साथ घुलाकर बरता जा सके, जलरंगों की श्रेणी के माने जाते रहे हैं। हमारे तमाम मिनिएचर चित्रों में भी यह विधि अपनायी गयी थी। पूर्व के देशों के जलरंगों का ऐसा इतिहास एक लम्बे अरसे तक अटूट रहा है। आज की कला में जलरंगों पर चर्चा का उद्देश्य तो स्वयं परम्परा और आज की स्थितियों के बीच अंतर्सम्बन्धों को तलाशना है और उन चीजों की ओर भी इशारा करना है जो जलरंग माध्यम के

साथ इस बीच घटित हुई है। मसलन आज के जलरंगी है माध्यम ने एक गुणात्मक परिवर्तन नहीं ला दिया और जलरंग माध्यम की अभिव्यक्ति क्षमता को और ज्यादा नही बढ़ा दिया विभिन्न माध्यमों के बीच तकनीकी स्तर पर ही नही, चाक्षुष स्तर पर भी जो आदान प्रदान हुए उनके कारण प्रायः हर माध्यम में एक नयी क्षमता पैदा हुई और जलरंगी माध्यम भी इससे अछूता नही रहा है। इस दृष्टि से भी हम जलरंगी माध्यम के चित्रों पर नया सोच– विचार कर सकते है।''

इस संदर्भ में प्रयाग शुक्ल ने नयी प्रयोगवादी जलरंग माध्यम समीक्षा करने के साथ उसका समालोचनात्मक अध्ययन किया और यह अध्ययन दर्शकों के सामने अनेक नए पक्षों, नये अर्थों को लेकर प्रस्तुत किया। प्रयाग शुक्ल के अनुसार जब समीक्षक किसी कलाकृति को देखता है तो वह अपने अनुभव के आधार पर श्रेष्ठ समीक्षा करता है। इन्होने भी एक समीक्षक की दृष्टि से समकालीन चित्रकार हिम्मत शाह की कृतियों को मूल्यांकित (आलोचित) किया है ''हिम्मत शाह उन कलाकारों में से है, जिन्होने कई माध्यमों से काम किया है। 60 के आस–पास उन्होंने एक चित्रकार के रूप में ख्याति अर्जित की और दो बार उन्हें अकादमी का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। अतः प्रयाग शुक्ल ने हिम्मत शाह (पक्का हुआ काम) समीक्षा को अनुभूत कर उनकी कला को बौद्धिक तथा उन्हें श्रेष्ठ कलाकार माना तथा उन्होंने विचार और भाषा दोनों स्तरों पर कला समीक्षा को कला जगत बड़ी आत्मीयता से याद करता है। तथा इनकी समीक्षा में रचे संसार का सत्य एक ऐसे मौलिक सर्जक का सत्य है जो कला इतिहास, आकांक्षा और आगत–विगत की तात्विकता से मुक्त है।''

यही कारण है किसी विशेष पद्धति संरचना और संदर्भ में रखकर इनकी समीक्षा नये संसार को प्रेरणा के साथ–साथ प्रेरित भी करती है। इसी प्रकार प्रयाग शुक्ल एक कला समीक्षक है जो सामाजिक राजनैतिक बौद्ध एवं ऐतिहासिक वातावरण की पुष्टि कर अपने वातावरण व समाज को प्रभावित करते हैं मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज से प्रभावित है। वह सदैव देश काल के बन्धनों में मुक्त दृष्टि रखते है। प्रयाग शुक्ल ने अपनी समीक्षाओं में वातावरण सृजन को महत्ता दी है। तथा उन्होंने कला व कलाकार को बाह्यय जगत तक सीमित नहीं रखा। व औपचारिक कला समीक्षा को भारतीय कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल ने भी अपनी कर्मठता व व्यक्तित्व से कला समीक्षा में स्थान – स्थान पर लाने का प्रयत्न किया है। प्रयाग शुक्ल की यह प्रवृत्ति इस बात का द्योतक है कि उनकी मूल अवलोचन में अपनी मनः शक्तियों को विकसित करने की तीव्र छटपटाहट विद्यमान रही है। ''प्रयाग शुक्ल की समीक्षा की उक्त प्रवृत्ति का विश्लेषण करने पर उनके व्यक्तित्व का जो पहलू हमारे सामने उभरता है वह यह कि प्रयाग शुक्ल अन्तर्मुखी होने के साथ–साथ बर्हिमुखी दृष्टिकोण

के कला समीक्षक है। यूँ तो प्रत्येक समीक्षकों में अपनी नवीन विचारधारायें रहतीं हैं। परन्तु प्रयाग शुक्ल में बर्हिमुखी प्रवृत्तियों न्यूनाधिक रूप में उपस्थित रहती है। परन्तु परिस्थितियों के कारण कुछ समीक्षाएँ अन्तर्मुखीवृत्ति की होती है।''

इनकी समीक्षा में मनोभौतिकी सौन्दर्यशास्त्र के अंतर्गत व्यक्तिगत भिन्नता भी महत्त्वपूर्ण होती है। ''सौन्दर्यशास्त्र संवेदनशीलता मनोभौतिकी सौन्दर्यशास्त्र के अंतर्गत होती है। यह सर्वमान्य धारणा रही है कि कुछ व्यक्ति कलाकृति में औपचारिक सौन्दर्य अधिक देख पाते है। और कुछ कम देख पाते है। प्रमुख रूप से प्रयाग शुक्ल की कला समीक्षा में मनोवैज्ञानिक विचारधारा दिखायी देती है।''

प्रयाग शुक्ल ने बाह्य औपचारिक सौन्दर्य के आधार पर कला की समीक्षा की। अतः कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल की समीक्षाएँ स्पष्ट मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखतीं हैं। संक्षेप में प्रयाग शुक्ल एक सहज व्यक्तित्व क कवि कला समीक्षक है। यही कारण है कि व्यापक कला जीवन की हलचल उनकी समीक्षाओं में इतनी स्पष्टता से उभर कर देखने को मिलती है। तभी तो विशिष्ट रूचि के साथ सामान्य वर्ग की समीक्षाओं की क्षमता के योग से उनके व्यक्तित्व की सहजता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

l UnHk l ph

1. डॉ. रीना सिंह – डॉ शोभानाथ यादव व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रकाशन नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ISN- 818129
2. डॉ. मधु जैन – यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, अभिलाषा प्रकाशन प्रथम संस्करण–19, अभिलाषा प्रकाशन, पृ. 31–33
3. डॉ. रीना सिंह – 22–23
4. Bjrane sode funch - The Psychology of Art application museum tusculanum press university of compenagen, 1977, page no. 114-115
5. वासुदेव नंदन प्रसाद – डॉ. रामविनोद सिंह, अनुपमा प्रकाशन, प्रथम संस्करण–1978
6. प्रयाग शुक्ल – पचास कविताएँ नयी सदी के लिए चयन वाणी प्रकाशन मकबूल फिदा हुसेन प्रथम संस्करण– 2012, पृ. 26
7. नित्यानन्द – डॉ. ज्ञान चन्द गुप्त रचनाकार रामदरश मिश्र, द्वितीय संस्करण – 1997 पृ. 188